भूमिका।

सर्व्व सनातनीय सत्यवेदोक्तधर्मावलम्बी आर्य सज्जनों को विदित हो कि सांप्रतकाल में युगराजधर्म की बलाढ्यता से अब इस भारतवर्ष में नवीन नवीन आचार्य उत्पन्न होकर अपनी अपनी प्रज्ञानुकूल वेदोक्तधर्म में कल्पनाकर सनातनीय वेदोक्तधर्म आम्नाय की निंदा करते हैं। और अपने कल्पित मतानुसार कुछ वेदभाग को मान उसका अर्थ स्वानुकूल करते हैं। और कुछ वेद भाग जो कि उनके कल्पित मत के विरोधी हैं उनको क्षेपक और अप्रमाणित कहते हैं। और पूर्व के वेदार्थप्रकाश आचार्यों को, जो कि इस भारतभूमि की आर्यप्रजा के ज्येष्ठ-श्रेष्ठ वृद्ध भये हैं उनको, नाना प्रकार के दूषण देते हैं और निन्दा करते हैं। तथा वेदादिकों करके प्रतिपाद्य जे इन्द्रादि देवार्चन और रामकृष्णादि ईश्वर-अवतार की उपासना, जो कि अन्तःकरण की शुद्धि और स्थिरता का मुख्य साधन है, उसको नानाप्रकार के कुतर्कों से अप्रमाणित करते हैं और तत्प्रतिपादक श्रुतिवाक्य को छिपाते हैं। कुछ श्रुतियों को अप्रमाणित कर और कुछ वेदभाग के अर्थ को अन्यथा करके आप अपनी कल्पना से अपना मत, जो कि इस समय के अन्य धर्मी अन्य देशी राजाओं के मतानुकूल है, उसको राज्य में स्वमान्यता की अभिलाषा से प्रकट करते हैं और अपने आपको सनातनीय वेदोक्त धर्मप्रकाशक आर्य मानते हैं। अपने ही पूर्व प्रकाशित वाक्य

को उत्तरकाल में आपही अप्रमाण करते हैं और अपने कथित वाक्य, जो कि स्वकल्पना से प्रतिपादन किये हैं उनको अब अप्रमाण कर अपनी भूल को ग्रंथ के शोधक और मुद्रितकर्ता के मस्तकपर डाल, आप सत्यवादी बनते हैं। एतदर्थ ऐसे अनवस्थित चित्तवाले के वाक्य, जो कि श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुषों करके किसी प्रकार भी मन्तव्य नहीं, उन्हींके वाक्य में वे पुरुष, जो कि प्रतीची विद्यारूप पठन करके कुतर्कों में प्रसरितप्रज्ञ हैं, सो विश्वास मानकर आप वेदरहस्यशून्य सूक्ष्मविचार-शक्तिरहित केवल वाचालपने से ईश्वर के अवतारादिकों विषे नाना कुतर्क कर अप्रमाण करते हैं सो उनका वेद-विरुद्ध कहना और मानना सब व्यर्थ है।

जो इस भारतवर्ष के सनातनीय आम्नाय प्रमाण वेदोक्तधर्म के माननेवाले सर्वप्रकार आस्तिकमत सूक्ष्मविचारशील आर्य पुरुषों के विचारार्थ ईश्वर अवतारसिद्धि को वेद-सिद्धान्त पराविद्या की श्रुति प्रमाण से गुरु-शिष्य के संवाद द्वारा आत्मवेत्ताओं का सेवक प्रकट करता है। जो सज्जन आस्तिकरीत्या आम्नायपूर्वक वेदोक्त धर्म के माननेवाले हैं, वे इस ग्रंथकार के विनय को स्वीकार करके इस अवतार-सिद्धि नामक ग्रन्थ को सूक्ष्म बुद्धि से विचार करके ईश्वर के अवतार-विषयक संशय को दूर करें।

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेशरी ॥ १ ॥

अवतार-सिद्धि

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।

श्रीपरमात्मने नमः । श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ।
श्रीरामकृष्णाभ्यां नमः । श्रीसर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥

नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय ।

शिष्य—हे गुरो ! इस भारतवर्ष की सनातनीय आम्नायपूर्वक कर्म-उपासना, ज्ञान कांडत्रयीरूप ऋगादि वेद, और मनु-याज्ञवल्क्यादि स्मृति, भारतादि इतिहास और ब्रह्मवैवर्तादि पुराण इन करके

प्रतिपाद्य जो धर्मरूप से कर्तव्य हैं वे सब अपने अपने अधिकारानुसार प्रमाण ही हैं । और इनके विषे जो धर्मरूप से कर्तव्यता प्रतिपादन किया है उस उस विषे जो किंचित् परस्पर विरुद्ध प्रतीत होता है सो सर्व अधिकारी के भेद से है अप्रमाण कुछ नहीं इससे जो पूर्वआम्नाय प्रमाण इस भारतवर्षीय आर्य प्रजा को प्रमाण है सोई सब आपके वाक्य से आस्तिकरीत्या हमको भी प्रमाण है क्योंकि जो सबसे मुख्य प्रमाण सनातनीय आम्नाय है जो कदापि आम्नाय त्याग देवे तो ईश्वर वेदादिकों को प्रमाण मन्तव्य शेष रहे नहीं जिनकी आम्नाय में ईश्वर वेदादि अप्रमाण हैं उनकी कुछ हानि नहीं होती और जिनकी आम्नाय में ईश्वर वेदादि प्रमाण हैं उनकी कुछ विशेषता नहीं होती इससे ईश्वर वेदादि जो प्रमाण हैं सो केवल एक सनातनीय आम्नायरीत्या ही प्रमाण हैं । आम्नाय के त्यागे कुछ भी प्रमाण नहीं इससे जो कुछ प्रमाण है सो सब एक आम्नाय के ही प्रमाण से प्रमाण है सो अस्तु । परंतु हे भगवन् ! समय राज्यानुकूल कई एक नवीन आचार्य भये हैं सो ऐसा कहते हैं कि निराकार, निर्विकार, अखंड, परिपूर्ण, सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उसका अवतार होता नहीं क्योंकि जो निराकार परमेश्वर सबसे बड़ा है वह मनुष्यादि शरीर, गर्भस्थानादि स्थान जो अति अल्प हैं, उस विषे नहीं समा सकता । और वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है इससे विना ही अवतार धारण

किये सब कुछ कर सकता है । इसीसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का अवतार होना असंभव है और उसका मानना तथा कहना अप्रमाण है ।

आप तथा अन्य जे सनातनीय आम्नाय प्रमाण माननेवाले हैं सो परमात्मा परमेश्वर का अवतार होना प्रमाण करते, कहते और मानते हैं । इससे हे भगवन् ! श्रुतियों के प्रमाण से इन कुतर्कियों के वाक्य पर युक्ति अनुभव से जैसा हो वैसा हमारे बोधार्थ कृपाकर निरूपण करिये ।

गुरु—हे सौम्य ! तुमने जो सनातनीय आम्नाय प्रमाण वेदादि सर्व प्रमाण माने सो यथार्थ है । परन्तु जो ऐसा कहते हैं कि निराकार, निर्विकार, अखंड, परिपूर्ण, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है सो सबसे बड़ा है इससे छोटी वस्तु जो शरीरादिक हैं उनके विषे वह समाय नहीं सकता इसीसे परमेश्वर का मनुष्यादि रूप से अवतार होना असंभव है और मानना अप्रमाण है ॥ १ ॥ और वह परमेश्वर शक्तिमान् है बिना ही अवतार धारण किये सब कुछ करने को समर्थ है एतदर्थ भी परमेश्वर का अवतार होना और मानना असंगत तथा अप्रमाण ही है । हे सौम्य ! ऐसे कुतर्क से कहनेवाले आचार्य श्रुतिविचार-अनुभव से शून्य हैं और उनके वाक्य को माननेवाले भी सूक्ष्मविचार-शून्य मूर्ख हैं । हर ! हर !! बड़ा आश्चर्य है कि जो

आचार्य परमात्मा परब्रह्म को निराकार निरवयव भी कहते हैं और यह भी कहते हैं कि सबसे बड़ा होने के कारण छोटी वस्तु जे देहादिक हैं उनके विषे नहीं समाय सकता । सो उनका कहना अविचारित आग्रहवश है ।

हे सौम्य ! देखो निराकार निरवयव सबसे बड़ा आकाश है जो कि परमात्मा की अपेक्षा अति स्थूल है सो भी घटादिक छोटी वस्तुओं में पूर्णता से समाय कर घटादिकों की उत्पत्ति विनाशादि धर्म से रहित, अपने स्वरूप में निर्विकार ज्यों का त्यों है । और परमात्मा तो ।

" सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति "

(मुंडक उ० के २ मुंडक की ७ वीं श्रुति)

आकाश से भी महासूक्ष्म चैतन्य है इससे आकाश के ही दृष्टान्त प्रमाण से महासूक्ष्म परमात्मा आकाशादि सर्व विषे व्याप्त है । और जो वस्तु साकार सावयव होती है सो वस्तु अपने से छोटी वस्तुओं में नहीं समाती । जैसे पर्वत साकार सबसे बड़ा है सो छोटे घटादिकों में नहीं समाता । और जो वस्तु आकाश से भी महासूक्ष्म है सो तो परिपूर्ण सर्वत्र व्याप्त है । तथा जो वस्तु छोटी वस्तु में नहीं समाती सो वस्तु एकदेश में होने और एकदेश में न होने से पूर्णता के अभाव से परिच्छिन्न अल्प कहाती है । और जो वस्तु परिच्छिन्न अल्प होती है सो वस्तु नाशवान् है । तथाच—

"यदल्पं तन्मर्त्यं"

(छांदोग्य उ० ७ प्र० २४ श्रुति)

हे सौम्य! जो कोई आचार्य परमात्मा का छोटी वस्तु में समाना नहीं मानते उनके मत से परमात्मा जो श्रुतियों के—

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णं तदुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाभिशिष्यते॥"

(बृहदारण्य उ० ७ अ० की आदि में)

इत्यादि वाक्य प्रमाण करके सर्वप्रकार सर्वरूप से परिपूर्ण है सो परिच्छिन्न अल्प विनाशी सिद्ध होता है। उससे उनका कहना अप्रमाण ही है। और श्रुति के प्रमाण से परमात्मा परिपूर्ण सर्वव्यापी है। जैसी जो आकृति है उस विषे वैसे ही आकार से समान एक रस स्थित है। बड़ी उपाधि के साथ बड़ा है और छोटी उपाधि के साथ छोटा है। परन्तु जहां है वहां उपाधि के सब धर्मों से रहित अपने विषे आप ज्यों का त्यों है। तथाच—

"वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च १०
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ११

(कठवल्ली उ० ५ वल्ली)

इससे त्रैलोक्य विषे यावत् नाम-रूपात्मक उपाधि है तावत् सर्व विषे अन्तर्यामी एक परमात्मा ही है और उपाधि के धर्म हैं सो कदापि स्पर्शमात्र भी नहीं करता अपने आप विषे ज्यों का त्यों निर्विकार ही है ।

हे सौम्य ! और श्रवण करो । बृहदारण्य उपनिषद् के पंचमाध्याय में अन्तर्यामी ब्राह्मण विषे उद्दालक याज्ञवल्क्य का संवाद है, वहां याज्ञवल्क्य भगवान् ने एक परमात्मा को अन्तर्यामीरूप से सर्वत्र प्रतिपादन किया है । तथाच—

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥"

जो पृथिवी के ऊपर है और जो पृथिवी के अन्तर है और पृथिवी जिसका शरीर है उसको पृथिवी नहीं जानती; सोई पृथिवीके आवान्तर अन्तर्यामी अमृत आत्मा है । इसी प्रकार जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, प्रकाश और तम आदिक सर्वके आवान्तर अन्तर्यामी अमृत आत्मा है । इस प्रकार अधिदैवरूप से प्रतिपादन करके पुनः अधिभूतरूप से भी कहा है । तथाच—

"यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्व्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यꣳसर्व्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्व्वाणि भूतानि

शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥"

जो सर्वभूतों के बाहर स्थित है, जो सर्वभूतों के अन्तर है, सर्वभूत जिसके शरीर हैं, सर्वभूत जिसको नहीं जानते सोई सर्वभूतों के आवान्तर अन्तर्यामी अमृत आत्मा है। हे सौम्य! इसी प्रकार अध्यात्मरीत्या भी सर्वान्तर प्रतिपादन किया है। तथाच—

"यः प्राणे तिष्ठन् प्राणान्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥"

इसीप्रकार वाचा के, चक्षु के, श्रोत्र के, त्वचा के, मन के, बुद्धि के, रेतपर्यंत अन्तर्यामी आत्मा को श्रुति ने अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म तीनों प्रकार तथा संपूर्ण चराचर के आवान्तर अन्तर्यामीरूप से एक परमात्मा ही को प्रतिपादन किया है। इससे हे सौम्य! संपूर्ण चराचर जगत् में एक परमाणुमात्र भी ऐसा नहीं कि जिसके आवान्तर अन्तर्यामीरूप से चैतन्य परमात्मा नहीं और परमाणु से लेके ब्रह्मांड पर्यंत जो जो स्थूल, सूक्ष्म, आकृति पारमेयता है सो सर्व एक परमात्मा से ही हुई है। इस आकाशादि सृष्टि के पूर्व एक परमात्मा से इतर कोई भी वस्तु नहीं कि जो स्थूल-सूक्ष्म सर्व ब्रह्मांड का उपादान और निमित्त कारण माना जाय। तथाच—

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किञ्चनमिषत् ॥"

(ऐतरेय उ० प्रथम श्रुति)

सर्व ब्रह्मांड का उपदान और निमित्त कारण एक परमात्मा ही है । मकड़ीवत् । तथाच—

"यथोर्णनाभीः सृज्यते गृह्णते च । तथाऽक्षरात्संभवतीह विश्वम् ॥"

(मुंडक उ० के १ मुंडक की ७ वीं श्रुति)

जैसे मकड़ी अपने जाले की रचना में आपही उपादान कारण है मृत्तिकास्थाने और आपही निमित्त कारण है, कुलाल किंवा दंड चक्रादि स्थाने । ऐसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा चैतन्य, इस सम्पूर्ण जगत् का रचना विषे एक आपही अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है । इससे सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत् एक परमात्मारूप ही है इससे पृथक् सत्ता का अभाव है । जैसे घटविषे मृत्तिका से इतर घटसत्ता का अभाव है । जैसे सुवर्ण से इतर भूषणसत्ता का अभाव है । जैसे लोह से इतर शस्त्रादि सत्ता का अभाव है । इससे घट, भूषण, शस्त्रादिकों विषे मृत्तिका, सुवर्ण, लोह ही सत्य है । इस विषे कार्यरूप घट, भूषण, शस्त्रादि केवल वाचारंभणमात्र कल्पित असत्य है । तथाच—

"यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"
(छांदोग्य उ० ६ प्रपाठक ४ श्रुति)

हे सौम्य! इत्यादि प्रकार अनेक श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्मा-श्रांति से तृणपर्यन्त यावत् व्याप्य व्यापकभाव जगत् है तावत् एक परमात्मा ही है इससे इतर न व्याप्य है, न व्यापक है। जैसे मृत्तिका के घट विषे मृत्तिका ही भरिये, तहां घट व्याप्य है मृत्तिका व्यापक है। घट आधार है मृत्तिका आधेय है सो अपने-अपने नाम, रूप लक्षण करके पृथक् पृथक् हैं परन्तु वास्तव करके व्याप्य घट और व्यापक मृत्तिका इन दोनों का अधिष्ठान पृथिवी विषे अभेद है वैसेही शरीरादि व्याप्य और अंतर्यामी व्यापक है सो अपने अपने नाम, रूप, लक्षण करके जड़ चैतन्य पृथक् पृथक् है तथापि सर्वाधिष्ठान अचेत्यचिन्मात्र परमात्मा सत्ता विषे अभेद है। जैसे स्वप्नसृष्टि का जड़-चैतन्य, व्याप्य-व्यापक, आधार-आधेय, कार्य-कारण आदि सर्व नाम-रूप पृथक्-पृथक् प्रतीत होने पर भी अनुभव सत्ता विषे अभेद है। जैसे सर्व नाम-रूपात्मक जगत्रूप से एक परमात्मा ही सुशोभित है।

हे सौम्य! समान रीति से यावत् नाम रूपात्मक जगत् है तावत् सर्व एक परमात्मा ही है। तथा च—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"
(छां० उ० ३ प्रपाठक १४ श्रुति)

इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से संपूर्ण नाम रूपात्मक जगत्-रूप से एक अद्वैत परमात्मा ही सुशोभित है इससे यावत् सचराचर जगत् है तावत् सर्व परमात्मा के ही अवतार हैं।

हे सौम्य! जो आचार्य कहते हैं कि परमात्मा परब्रह्म सर्व से बड़ा है, वह छोटी वस्तु देहादि किंवा गर्भस्थानादिकों विषे नहीं समाय सकता इससे उसका अवतार मानना योग्य नहीं। सो उनके वाक्य को ऊपर कहे प्रकार श्रुति-प्रमाण से विचार करो। जो सर्व प्रकार सर्वरूप से सर्वत्र एक परमात्मा ही सुशोभित है उसको न मानकर अपनी कल्पना से नानाप्रकार की कल्पना उठाय, ईश्वर अवतार को अप्रमाण कहते हैं सो उनका कहना ही उनको नास्तिक सिद्ध करता है। क्योंकि जो परमात्मा परब्रह्म सर्वरूप से सर्वत्र बाहर भीतर परिपूर्ण है। तथाच—

"सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः"

(मुं० उ० ३ मुंडक २ श्रुति)

उससे पृथक् सत्तावान् एक परमाणु भी नहीं तब समाता न समाता मानकर यह ब्रह्म है यह नहीं है, ऐसा समझकर एक अखण्ड परिपूर्ण परमात्मा को खण्ड परिच्छिन्नरूप से जानना और कहना यही नास्तिकता है। और सर्वरूप से सर्वत्र अखण्ड परिपूर्ण परमात्मा को प्रतिपादन करती श्रुति उसको प्रकट न करके श्रुति से बाह्य अपनी कल्पना करनी और लोकों विषे अपने

को वेदमतावलंबी परम आर्य्य सत्यवादी मानना और विदित करना सो केवल नास्तिकता तथा धूर्त्तता ही है इससे हे सौम्य! ऐसे पुरुषों के वाक्य तुमसरीखे श्रुति वाक्यानुसार विचारशील आस्तिक पुरुषों को मानने योग्य नहीं। इसका सूक्ष्मबुद्धि से विचार करो। हे सौम्य! यहां पर्य्यंत उन कुतर्की पुरुषों के उस कुतर्क वाक्य का जो वे कहते हैं कि " परमात्मा परब्रह्म सर्व से बड़ा होने से छोटी वस्तु जो देहादि उन विषे नहीं समाय सकता अतः उसका अवतार मानना और कहना अप्रमाण है " उस वाक्य का श्रुति के प्रमाण, अनुभव तथा युक्ति से संक्षेपमात्र खण्डन किया। उसका तुमको भलीप्रकार विचार करना योग्य है आगे जो इच्छा।

हे सौम्य! अब उन पुरुषों के उस वाक्य का विचार श्रवण करो जो वे कहते हैं कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, वह विना ही अवतार धारण किये सर्व कुछ करसकता है इससे धर्मरक्षणार्थ भी उसका अवतार होना और मानना असंभव तथा अप्रमाण ही है। अब उसका उत्तर भी श्रवण करो।

हे सौम्य! उन पुरुषों का जो प्रथम वाक्य है कि परमेश्वर सर्व से बड़ा होने से छोटी वस्तुओं में नहीं समाय सकता इससे परमेश्वर का अवतार मानना योग्य नहीं। सो इस वाक्य में यह सिद्ध हुआ कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर, सर्वशक्तिमान् एवं सर्व से बड़ा होकर भी छोटी वस्तुओं में समाय अपने स्वरूप में ज्यों का त्यों रहे

इससे जो शक्ति जड़ आकाश में है सो चैतन्य परमेश्वर में नहीं। जब अपने से छोटी वस्तु में समाने की शक्ति उसको नहीं तब परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् मानना और कहना भी योग्य नहीं। अतः जो पुरुष परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् भी कहते हैं और यह भी कहते हैं कि वह परमेश्वर छोटी वस्तुओं में नहीं समाय सकता सो 'वदतो व्याघात' करते हैं अर्थात् अपने कहे वाक्य का आपही खंडन करते हैं। एतदर्थ भी उन धूर्त्त पुरुषों के वाक्य मानने योग्य नहीं।

शिष्य—हे भगवन्! वे पुरुष कहते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में अवतार-धारण-शक्ति तो है परन्तु अवतार धारता नहीं इससे अवतार का मानना अप्रमाण है।

गुरु—हे सौम्य! जो पुरुष ऐसा कहते हैं कि परमेश्वर में अवतार-धारणशक्ति है परन्तु अवतार धारता नहीं, सो उन पुरुषों से यह प्रश्न करना चाहिये कि बिना ही अवतार धारण किये परमेश्वर में अवतार धारण करने की शक्ति का अस्तित्व किस आधार से मानते हो। जैसे किसी मनुष्य में कोई गुण होता है तो वह गुण जब व्यापार द्वारा प्रकट जानने में आता है तब उस मनुष्य में उस गुण के अस्तित्व को मानते हैं। बिना उस गुण के प्रकट जाने उस मनुष्य में उस गुण का अस्तित्व आरोप व्यर्थ है। ऐसे ही परमेश्वर का अवतार होना न मानकर परमेश्वर में अवतार

होने की शक्ति का आरोप व्यर्थ है । इससे उन कुतर्की पुरुषों का यह वाक्य भी मानना योग्य नहीं ।

हे सौम्य ! अब परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता जिस प्रकार उस विषे रहती है और जिस प्रकार प्रकट होकर जानने में आती है सो सर्व संक्षेपमात्र तुम्हारे प्रति कहते हैं । उसको सावधानता से श्रवण करो ।

हे सौम्य ! जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा है सो निराकार, निर्विकार, सर्वउपाधि से रहित, अखण्ड, आकाशवत् परिपूर्ण, समान, एकरस, अचेत्य, चिन्मात्र और विज्ञानघन है । वह न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न बड़ा है न छोटा है, न श्वेत है, न श्याम है । तथाच–

" सहोवाचैतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणमसुखममात्रमनंतरमवाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन । "

(बृ० उ० ५ अ० ८ ब्राह्मण ८ श्रुति)

इसप्रकार सर्व आकार, विकार, नाम रूपादिक से रहित, अस्तिमात्र, परम शांत तत्त्व है उसकी जो सर्वशक्तिमत्ता है सो उस विषे तद्वत् ही अभेदरूप से व्याप्त है । जैसे काष्ठ विषे अग्नि, अग्नि विषे उष्णता, आकाश विषे शून्यता इत्यादि अभेद स्थित

है। वैसे ही परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता परमात्मा विषे अभेद है इस से परमात्मा की जो सर्वशक्तिमत्ता है सो विना परमात्मा के विशेष रूप धारे, साक्षात् इदं करके जानने में आती नहीं। जैसे सामान्य अग्नि विषे, जो कि काष्ठादि सर्व विषे व्याप्त है, दाहकतादि शक्ति है सो सामान्यरूप से ही उस विषे स्थित है। जब काष्ठादिकों के मंथनद्वारा अग्नि विशेषरूप को धारती है तब उसकी दाहकता, प्रकाशकता आदि शक्ति भी विशेषरूप से देखने, कहने विषे आती है। विना अग्नि के विशेषरूप धारे, दाहकता आदि शक्ति प्रकट होती नहीं और विना उसके प्रकट हुए अग्नि विषे उस शक्ति के अस्तित्व का आरोप बने नहीं।

हे सौम्य! वैसेही निराकार, निर्विकार, महासूक्ष्म, निर्विशेष परमात्मा है। उसकी जो सर्वशक्तिमत्ता है सो उस विषे तद्रूप से ही स्थित है। जब वह परमात्मा अपने चैतन्यरूपता करके अपनी इच्छा द्वारा अपने विषे ज्यों ज्यों विशेषरूप को धारता है त्यों त्यों उसकी जो सर्वशक्तिमत्ता है सो भी पृथक् पृथक् जानने और कहने विषे आती है कि यह परमात्मा की शक्ति है। विना परमात्मा के विशेषरूप धारे उसकी शक्ति जानने में आवे नहीं।

हे सौम्य! जैसे किसी मनुष्य में बहुत से गुण होते हैं, उन में से जो जो गुण उसके अवयवद्वारा प्रकट होते हैं सोई सो गुण जानने में आते हैं तबही उस मनुष्य में उन-उन गुणों के अस्तित्वका

निश्चय होता है और उसी के आश्रय उस मनुष्य में गुण का आरोप होता है । जो यह पुरुष इन गुणों करके सम्पन्न गुणी है और यावत् वे गुण अवयवों की विशेषता द्वारा प्रकट नहीं होते तावत् वे गुण गुणी के विषे निर्गुण होकर रहते हैं और यावत् वे गुण गुणी में निर्गुणवत् रहते हैं तावत् उस मनुष्य की भी निर्गुणसंज्ञा रहती है इससे उसको गुणी करके कोई मानता नहीं ।

हे सौम्य ! वैसे ही परमात्मा अनन्त शक्तिमान् है, तथापि उसको सर्वशक्तिमान् कहना विना उसकी शक्ति को प्रकट अनुभव किये, बने नहीं और उसकी सर्वशक्तिमत्ता विना उसके विशेष रूप धारे, प्रकट अनुभव होती नहीं, एवं विना उसके प्रकट अनुभव किये उसका आरोप परमात्मा में बने नहीं इससे यावत् परमात्मा अपने में विशेषरूप धारण करता नहीं तावत् उसकी सर्वशक्तिमत्ता उसमें भविष्यद्वत् रहती है, तब उस अवस्था में परमात्मा में सर्वशक्तिमत्ता का विशेषण भी बने नहीं और वह भविष्यद्रूपा सर्वशक्तिमत्ता परमात्मा में स्वभावभूत होने से निर्विशेषरूप से ही रहती है । वह भविष्यद्रूपा निर्विशेष सर्वशक्तिमत्ता में से जो जो शक्ति परमात्मा के जिस जिस विशेषरूप द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं, वह विशेष रूप ही परमात्मा का अवतार है । जितनी कुछ जगत्रूप विशेषता है तावत् ।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"

सर्व परमात्मा का ही स्वरूप है । तथाच—

ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म तस्योपव्याख्यानं यद्भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव ॥"

(मांडूक्य उ० प्रथम श्रुति)

तथाच—

"अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चंद्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥"

(मुंडक उ०२ मुंडक ४ श्रुति)

परमात्मा के जिस जिस विशेष रूप में जो जो शक्ति है वह सब उस परमात्मा की ही है । इससे जितना कुछ जगत्‌रूप विशेष विस्तार है, वह समानरूपता करके एक परमात्मा के ही अवयवरूप अवतार है ।

हे सौम्य ! अभिप्राय यह है कि विना जगत्‌रूप विशेष अवयवों के परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता पृथक्‌रूप से प्रकट होती नहीं । इससे यावत् निर्विशेष परमात्मा अपने में विशेष रूप को धारणकर अपनी शक्ति प्रकट करे नहीं तावत् परमात्मा का सर्वशक्ति समेत विना विशेषरूप आधार के अस्तित्व कहना होवे नहीं; क्योंकि जब उसके होने में कोई भी विशेष चिह्न नहीं तब विना विशेष चिह्नरूप आधार के उसका अस्तित्व भी बने नहीं और जब परमात्मा का अस्तित्व नहीं तब सर्वशक्तिमान् किसको मानिये अर्थात् किसी को भी नहीं ।

हे सौम्य ! परमात्मा के विशेषरूप और उससे उसकी विशेष शक्ति को न मानकर जो पुरुष परमात्मा का अवतार होना नहीं मानते, उनके मत में नास्तिक प्रसंग सिद्ध होता है।

हे सौम्य ! अब सर्वशक्तिमान् परमात्मा का अस्तित्वभाव और उसकी सर्वशक्तिमत्ता जगत्रूप अवयवों की विशेषता द्वारा प्रतिपादन करते हैं और उसके वे अवयव, जिनके द्वारा उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रकट होती है, सामान्य करके परमात्मा के ही अवतार प्रतिपादन करते हैं। यहां प्रथम जीवात्मा का दृष्टान्त कहते हैं। कारण, यह जीवात्मा वास्तव में सर्व उपाधि से रहित परमात्मा ही है। तथाच—

"जीवेनात्मनानुप्रविश्य"

(छां० उ० ६ प्रपाठक ३ श्रुति)

तथा—

"स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत"

(ऐतरेय उ० ३ खंड १२ श्रुति)

तथा—

"अयमात्मा ब्रह्म"

(मां० उ० २ श्रुति)

तथा—

"स आत्मा तत्त्वमसि"

(छां० उ० ६ प्र० ८ श्रुति से १६वीं श्रुति पर्यंत)

इत्यादि प्रमाणों से अध्यात्म व्यष्टिरूप आत्मा के दृष्टान्त से समष्टिरूप अधिदैव परमात्मा को विचार करना ।

हे सौम्य ! जिस किसी को जो शक्ति या गुण प्रकट होता है, वह उसी द्वारा होता है, और द्वारा नहीं । जैसे जीवात्मा की जो शक्ति है, उस विषे तादात्म्यता से स्थित है । जब जीवात्मा जाग्रत् स्वप्न की सर्व उपाधि को त्याग सुषुप्ति अवस्था में सर्व उपाधि से रहित केवल स्वयंप्रकाश एकरस विज्ञान घन अद्वैत होता है, उस अवस्था में उसकी जो शक्ति है, वह भी उसमें तादात्म्यभाव से ही रहती है । जैसे बीज में वृक्षशक्ति बीजरूप से ही रहती है, वैसेही इससे जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में अपने निर्विशेष भाव को प्राप्त होता है । उस अवस्था में उसकी शक्ति भी निर्विशेष भाव से ही रहती है । उस निर्विशेष अवस्था में निर्विशेष आत्मा विषे सर्व-शब्द के अर्थ के अभाव से सर्वशक्तिमत्ता का विशेषण बनता नहीं; क्योंकि विशेषण विशेष्य विना होता नहीं । जैसे किसी दंडधारी को दंडी विशेषण से कहते हैं कि यह पुरुष दंडी है, वह उस पुरुष में दंडी का विशेषण तब होता है, जब उसके पास दंड की विशेषता होती है और जो उसके पास दण्ड की विशेषता न हो तो उसमें दण्डी का विशेषण भी कहना बने नहीं । ऐसे ही निर्विशेष सजातीय, विजातीय स्वगत भेद से रहित एक अद्वैत आत्मा में विशेषता कुछ है नहीं; इसलिये उसमें सर्वशब्द की प्रवृत्ति नहीं । इसीसे निर्वि-

शेष आत्मा में सर्वशक्तिमत्ता का विशेषण बने नहीं । परंतु उस निर्विशेष आत्मा में, जो निर्विशेष्यता से ही सर्वशक्तिमत्ता है, उसका नास्तित्वभाव नहीं; क्योंकि आत्मा अविनाशी है । इससे उसकी सर्वशक्तिमत्ता भी अविनाशी है तथापि वह सर्वशक्तिमत्ता अपनी विशेष्यता के अभाव से निर्विशेष्य आत्मा में विशेषण का हेतु नहीं । इसी हेतु से सुषुप्ति अवस्था में निर्विशेष्य आत्मा में दर्शन, श्रवण आदि शक्ति होते हुए भी दृश्य शब्दादिकों के अभाव से द्रष्टा, श्रोता आदि विशेषणों से कहना बने नहीं । तथाच—

"यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्वैतन्न पश्यति नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् ॥" इत्यादि ।

(बृहदारण्य उ० अ० ६ तृतीय ब्रा० २३वीं श्रुति से ३०वीं श्रुति पर्यंत)

जब जीवात्मा जाग्रत्, स्वप्न, स्थूल, सूक्ष्मरूप विशेष उपाधि में आता है तब उन उपाधियुक्त विशेष अवस्था में आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता देखने-सुनने में आती है । उस अवस्था में द्रष्टा, श्रोता, मंता, विज्ञाता आदि विशेषण कहे जाते हैं । तथाच—

"नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञातृ ॥" इत्यादि ।

(बृ० उ० ५ अ० ८ ब्रा० १० श्रुति)

हे सौम्य ! जीवात्मा की जो शक्ति है, वह अवयवरूपी विशेषता द्वारा प्रकट होती है। वह भी होती है, जब जीवात्मा उन अवयवों में प्रवेश कर अपनी शक्ति को प्रकट करता है। बुद्धि में निश्चय आदि विज्ञातृशक्ति, प्राण में क्रियाशक्ति, नेत्र में दर्शनशक्ति, श्रोत्र में श्रवण शक्ति इत्यादि जो शक्ति हैं, वह सब आत्मा की हैं। बिना चैतन्य जीवात्मा के शव में सर्व अवयव होते हुए भी कोई शक्ति नहीं और जब जीवात्मा अवयवरूप सर्व उपाधि को छोड़ सुषुप्ति अवस्था में साक्षी आत्मा साथ निर्विशेष होता है तब अवयवों में कोई भी शक्ति देखने में आती नहीं। इससे सर्व अवयवों में सर्वशक्ति जीवात्मा की है; परन्तु जब जीवात्मा निर्विशेषभाव को प्राप्त होता है तब सर्व विशेषता के अभाव से आत्मा में सर्वशक्ति होते हुए भी वह विशेषण कहने का हेतु नहीं और निर्विशेष आत्मा का जो मन इन्द्रिय आदि अवयवों के साथ मिलकर द्रष्टा आदि विशेष्य भावको प्राप्त होना है, वही उसका अवतार होना है और भी पृथक् पृथक् नाम-गुणसे कहा जाता है—बुद्धि साथ मिलकर बोद्धा, मन साथ मिल कर मंता, दृष्टि साथ मिलकर द्रष्टा, श्रोत्र साथ मिलकर श्रोता और वाणी साथ मिलकर वक्ता आदिक होजाता है। तथाच—

"परे देवे मनस्येकी भवति तेन तर्हि पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते न वदते न रमते नानन्दयते न विसृजते नेयते स्वपितीत्याचायते।

एव हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ॥" इत्यादि ।

(प्रश्न उ० ४ प्रश्न ९ तथा ८वीं श्रुति)

"हे सौम्य ! सुषुप्तिवत् सर्व विशेषता से रहित निर्विशेष आत्मा है उसका निर्विशेषभाव से उत्थान हो, अवयवों साथ मिल, विशेषरूप धारकर जाग्रत्-स्वप्नरूप जगत् विषे आता है । वही आत्मा का अवतार होना है; क्योंकि अवतार नाम उतरने का है । इससे आत्मा का जो निर्विशेषभाव में उतर, अवयवों साथ मिलकर विशेषरूप होना है, वही आत्मा का अवतार है और वही सगुण साकार होना है; परन्तु वह नित्यअवतार है और आत्मा का जो इच्छापूर्वक कर्मकर, परलोक में फलभोगार्थ शरीर धारण करना है, वह नैमित्तिक अवतार है । वहाँ नैमित्तिक अवतारों में नित्य अवतार का भाव है और नित्य अवतार में नैमित्तिक अवतार का अभाव है; परन्तु जीवात्मा नित्य-नैमित्तिक-भाव-अभाव से रहित नित्य-नैमित्तिक उभय अवतारों में सर्व उपाधि से रहित समान है ।

हे सौम्य ! ऐसा जो सर्व उपाधिरहित सुषुप्तवत् निर्विशेष, निराकार, निर्विकार, निर्गुण, समान, एकरस आत्मतत्त्व है, उसकी जो दृश्यात्मक, श्रवणात्मक, बोधात्मक निर्विशेष शक्ति है, वह नित्य-नैमित्तिक, स्थूल-सूक्ष्म देहेन्द्रिय मन आदिरूप विशेषता साथ मिलकर प्रकट होती हैं और जब प्रकट होती हैं तभी जानने-

कहने विषे आती हैं। जो आत्मा अपने निर्विशेषभाव से इन्द्रिय आदि विशेष के साथ विशेषभाव को प्राप्त न हो तो उसकी कोई भी शक्ति जानने में आवे नहीं और जब उसकी कोई भी शक्ति जानने में आवे नहीं तब उसके अस्तित्व का निश्चय भी आवे नहीं, तब उसके निश्चय के अभाव से नास्तिकप्रसंग सिद्ध होता है।

हे सौम्य! इसी कारण, आत्मवेत्ता विद्वान् प्रथम अपने आप आत्मा को स्थूल-सूक्ष्म अवयवों की विशेषता द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। तथा च—

"यः प्राणेन प्राणिति सत आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानिति सत आत्मा सर्वान्तरः॥" इत्यादि।

(बृ० उ० अ० ५ ब्रा० ४)

इससे—

"नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ॥" इत्यादि।

(बृ० उ० अ० ५ ब्रा० ८)

जो प्राण होकर प्राण का कार्य करता है, जो अपान होकर अपान का कार्य करता है, वही सर्वान्तर आत्मा है, इससे आत्मा से अन्य द्रष्टा नहीं। श्रोता, मंता आदि कोई नहीं। आत्मा ही द्रष्टा, श्रोता, मंता, बोद्धा आदि है। इससे मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि स्थूल-सूक्ष्मसंघात के जो जो द्रष्टृत्व, श्रोतृत्व, मन्तृत्व, ज्ञातृत्वादि

शक्ति हैं, वह सब आत्मा की हैं, आत्मा से व्यतिरिक्त इस स्थूल-सूक्ष्म विशिष्ट विषे शक्तिमान् कोई नहीं ।

हे सौम्य ! इस प्रकार मन, बुद्धि, देहेन्द्रियों की स्थूल-सूक्ष्म विशेषता द्वारा निर्विशेष शक्तिमान् आत्मा को श्रुति के वाक्य-प्रमाण से । तथा च--

" धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः "

(क० उ० २ वल्ली २० श्रुति)

साक्षात् अनुभव करके पुनः देहेन्द्रिय मन, बुद्ध्यादि स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त्तामूर्त्त सर्व विशेषता को 'नेति नेति' श्रुति के वाक्य द्वारा गिराकर सुषुप्तवत् सर्व विशेषता से रहित निर्विशेष शक्तिमान् आत्मा को अपने आप आत्मत्व से अनुभव करता है, वही आत्मज्ञान है और जिस आत्मज्ञान से वृत्ति का वृत्तित्व के अभाव से तादात्म्य अभेद अध्यास द्वारा व्यवधान से रहित ब्रह्माकार होना है वही साक्षात् मोक्ष का स्वरूप है । सो आत्मज्ञान द्वारा ही होता है अर्थात् ब्रह्मात्मा के अभेदज्ञान द्वारा ही होता है । तथाच—

" नान्यः पंथा विमुक्तये "

(कैवल्य उपनिषद्)

और मोक्ष का मार्ग कोई नहीं ।

इससे हे सौम्य ! परमात्मा को सर्वशक्तिमान् और सामान्य अवतारूप होने के विषय में तुमको जीवात्मा का दृष्टान्त कहा है । सो

अध्यात्मरीत्या दृष्टान्तभूत परमात्मा को ही कहा है। क्योंकि परमात्मा से इतर आत्मा नहीं और आत्मा से इतर परमात्मा नहीं। तथाच—

" तत्त्वमेव त्वमेव तत् "

(कैवल्य उपनिषद्)

इससे उपाधि-निरुपाधि के भेद से आत्मा-परमात्मा का भेद कल्पित है, वास्तव में निरुपाधि समान चैतन्यसत्ता में भेद नहीं। आत्मा परमात्मा का अभेद ज्ञान ही मोक्ष का साधन है और नहीं। जो कोई पुरुष आत्मा परमात्मा में भेद द्वैतभाव मानते हैं, उनका जन्म-मरण कदापि नहीं छूटता। तथाच—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः समृत्युमाप्नोति इह नानेव पश्यति ॥" इत्यादि ।

(क० उ० ४ वल्ली १० श्रुति)

परंतु हे सौम्य ! तुम्हारे बोध के लिये अब दृष्टान्तभूत अधिदेव परमात्मा को कहते हैं उसको भी श्रवण करो कि जिस प्रकार उसकी सर्वशक्तिमत्ता का और उसके अवतार होने का तुमको निस्संदेह निश्चय हो।

हे सौम्य ! जिस प्रकार तुमको जीवात्मा का दृष्टान्त कहा है, वैसे ही सर्व विशेषता से रहित निराकार, निर्विकार, निरवयव, निर्विशेष, समान, एकरस, अखंड, परिपूर्ण, महासूक्ष्म व अचेत्य चिन्मात्र, परमतत्त्व परमात्मा है। उसकी जो सर्वशक्तिमत्ता है, वह

भी उसमें तद्वत् ही स्थित है (बीज में वृक्षसत्तावत्)। उस अपनी निर्विशेष शक्ति को विशेषता से अनुभव करने के अर्थ अपने निर्विशेष स्वरूप में विशेषरूप धारने की इच्छा कर (मनोराज्यवत्) विशेषरूप धारण किया । जैसे चक्रवर्ती राजा अपनी साहसता, शूरता, लाघवता आदि शक्ति जो स्वभावरूप अभेद हैं, उसको प्रकट अनुभव करने के अर्थ मृगयाकी इच्छा कर मन्त्री, सेना, वाहनादि सामग्री ले वन में प्रवेश कर अपनी सर्वशक्ति को अनुभव करता है ।

हे सौम्य ! वैसे ही अखंड परिपूर्ण, महासूक्ष्म केवल विज्ञानघन (शिलाकोशवत्) भेदरहित अद्वैत परमात्मतत्त्व है, जिससे इतर एक परमाणुमात्र भी नहीं। उसने अपनी अभेद निर्विशेष शक्ति को देखा। तथाच—

"आत्मा व इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चनामिषत्" इत्यादि ।

(ऐ० उ० आदि)

और विचार किया कि अब अपनी निर्विशेष शक्तिमत्ता को विशेषता से अनुभव करना चाहिये । ऐसा विचार कर इच्छा किया । तथाच—

" तदैक्षत बहु स्यामप्रजायेयेति "

(छां० उ० ६ प्रपाठक २ श्रुति)

जो मैं एक हूँ सो बहुत रूप होऊँ ।

हे सौम्य! सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत् के पूर्व का जो अचेत्य, चिन्मात्र, महासूक्ष्म, सर्व कलंक से रहित, परमशुद्ध, परिपूर्ण, अस्फुर आत्मतत्त्व है, उसका चैतन्यरूपता करके जो चेतना के सम्मुख होना है, उसको चेतनोन्मुखत्व कहते हैं। वह कैसा है, जैसे बीजगत वृक्षसत्ता का अंकुर संज्ञाको न पाकर अंकुरत्व के सम्मुख होना। सो चेतनोन्मुखत्व चेतनाभाव को अंकुरवत् प्राप्त हुई वही त्रिगुण की साम्यतारूप आदिशक्ति है, उसीको आदि माया भी कहते हैं। तथाच—

"चेतनेत्यभिधीयते"

(सप्तशती ५ अ० १३ श्लोक)

उनके साथ मिला जो चैतन्य है, उसको शबल ईश्वर आदि जीव इत्यादि नाम से कहते हैं। और वह चेतनारूप आदिशक्ति परमात्मा को उसकी सर्वशक्तिमत्ता की लीला प्रकट अनुभव कराने के अर्थ आप परमात्मा की सत्ता पाकर "एकोऽहं वहुस्याम्" इस स्फुरणरूप से विशेष हुई अंकुर से पत्रवत् उस आदि इच्छा में इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति का मुख्यता से ओतप्रोत है अंकुर में पत्रवत्। सो "एकोऽहं वहुस्याम्" इस प्रकरण के एकः अहम् वहुस्याम् तीनों पदों के साथ पृथक् पृथक् गुण विभागयुक्त विशेषहुई। वहां एकः एक ऐसा जो स्फुरण वह सत्त्वप्रधान ज्ञानशक्ति अनावरण और अहं ऐसा जो स्फुरण सो रजःप्रधान इच्छाशक्ति सविक्षेप और वहुस्याम् तमःप्रधान क्रियाशक्ति सावरण।

हे सौम्य ! इस प्रकार शुद्ध निर्विशेष परमात्मा की निर्विशेष शक्ति स्फुरणरूप विशेषभाव से अंकुर के तीन पत्र (?) सुशोभित हुई परन्तु परमात्मसत्ता से इतर नहीं, केवल एक समझानेमात्र अध्यारोप से कहा है। तब इस त्रिगुणात्मक इच्छाशक्ति में परमात्मा की सत्ता पा इस प्रपंचरूप वन को खड़ा कर उसमें परमात्मा को लीला दिखाने के अर्थ जीवरूप बुर्क़ा पहिराय प्रवेश कराया है। वहाँ प्रथम इच्छारूप माया ने अपंचीकृत पंचमहाभूत और अहंकार महत्तत्त्व इन सात तत्त्वों का अधिदैव विराट्रूपी भूमंडल किया। फिर उसमें पंचीकृत पंचमहाभूतात्मक स्थूल प्रपंच अधिभूत विराट्-रूपी वन किया। उसमें पंचविषयात्मक नामरूप नाना प्रकार के मृगादि जीव किये और चतुर्दशभुवनरूपी लीला देखने के स्थान किये कि जहाँ परमात्मा जीवरूप बुर्क़ा पहिरकर लीला देखे और अध्यात्मविराट् देहरूप हाथी किया।

हे सौम्य ! इस प्रकार परमात्मा की इच्छारूपी माया ने लीला की सामग्री प्रपंचरूप पवन को खड़ा कर परमात्मा को दिखाया और कहा कि अब हमारे साथ देहरूप हाथी पर आरूढ़ हो प्रपंचरूपी वन में प्रवेश करके इस अपनी लीला को देखिये और अपनी सर्व-शक्तिमत्ता को अनुभव करिये कि जो आपकी इच्छा है।

हे सौम्य ! इस प्रकार परमात्मा की स्फुरणरूप माया ने पर-मात्मा से कहकर पुनः उस महाराज को मनुष्यशरीररूपी हाथी के

मस्तकरूप हौदा पर आरूढ़ किया और सर्व के प्रेरक अन्तर्यामी को उसका मंत्री किया और चिदाभास को सर्वका नायक सेनापति किया। नाना इंद्रियाँ और नाना वृत्तिरूपी सेना किया और नाना प्रकार की वासना, कामना, तृष्णादिकों को श्वान, बाज आदि विषयरूपी मृग फँसाने की सामग्री किया।

हे सौम्य! इस प्रकार परमात्मा की इच्छारूपी माया ने सर्व सामग्री सहित परमात्मा को राजा महाराजवत् प्रपंचरूप वन में मृगयालीला द्वारा उसकी सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव करने के अर्थ आप उसके प्रधानवत् अग्रसर हो प्रवेश कराया परंतु परमात्मा से इतर कुछ नहीं इससे अभिप्राय यह है कि जैसे राजा अपनी साहसता आदि शक्ति को प्रत्यक्ष अनुभव करने के अर्थ मृगया के निमित्त वन में प्रवेश करे हैं, मांसादिकों के लोभार्थ नहीं। ऐसे ही निराकार, निर्विकार, परमात्मा ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता को प्रत्यक्ष अनुभव करने के अर्थ अपनी इच्छारूप माया के साथ मिलकर इस प्रपंचरूपी वन में प्रवेश किया है, और कामना कोई नहीं।

हे सौम्य! अब इसको और प्रकार भी वृद्धों की साक्षीपूर्वक श्रवण करो! छांदोग्य उपनिषद् के षष्ठ अध्याय में उद्दालक मुनि ने अपने श्वेतकेतु नामा पुत्र को विद्याका अहंकारी जानकर उसके अहंकार को गिराने के अर्थ प्रश्न किया है। तथाच—

"श्वेतकेतो यन्नु सौम्येदं महामना ऽनूचानमानी

स्तब्धोऽस्युतत आदेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्य-
मतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति ॥"

(छां० उ० ६ प्र० ४ श्रुति)

हे श्वेतकेतो ! यह जो तैं अहंकार कर अपने को विद्या में बड़ा मान कर किसी ज्येष्ठ श्रेष्ठ के आगे नमता नहीं, सो मैं जानता हूँ, जो तैं बड़ा विद्वान् है परंतु वह विद्या, जिस एक विद्या के श्रवण करने से सर्व अश्रुत पदार्थ भी श्रुत होता है । जिस एक के मन को सर्वका मनन होता है, जिस एक के जानने से सर्व जाना जाता है, उस विद्या को तैं जानता है या नहीं ? ।

हे सौम्य ! इस प्रकार जब उद्दालक मुनि ने अपने पुत्र से प्रश्न किया तब श्वेतकेतु ने प्रश्न किया कि--

"कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति"

हे भगवन् ! वह कौन विद्या है, सो आप कहिये तब पिता ने कहा--

"यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥"
इत्यादि ।

हे सौम्य ! जैसे एक कारणभूत मृत्पिंड के जानने से सर्वमृण्मय कार्यभूत जाना जाता है, उस कार्यभूत घटशरावादिकों में नामरूप वाचारंभणमात्र ही है । मृत्तिका से इतर घटादिकों की पृथक् सत्ता का अभाव है । इससे घटादिकार्य में एक मृत्तिका ही सत्य है ।

हे सौम्य ! इत्यादि प्रकार से यह सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् अपने होने में पूर्व एकसत्ता ही था (घटादिकों से पूर्व मृत्तिकावत्) वह कैसा था ? एक अद्वैत था । तथाच—

"तदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम्"

(छां० उ० ६ प्र० द्वितीय खण्डकी प्रथमश्रुति)

अर्थात् सजातीय विजातीय स्वगतभेद से रहित एक संख्यातीत अद्वैत सत् ही था ।

"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति"

उस सत् ने अपनी लीला देखने के अर्थ इच्छा किया कि मैं बहुत रूप होऊँ । उस इच्छा द्वारा—

"तत्तेजोऽसृजत"

एक-तेजका स्वरूप अपने में रचा, जिसको लोकादि अग्नि भी कहते हैं । उसमें—

"जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य"

जीवरूप से अर्थात् प्रतिविम्बरूप से प्रवेश कर अपने प्रथम के 'बहुस्याम्' संकल्प ऊपर पुनः—

"तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति"

उस तेजतत्त्व द्वारा इच्छा किया कि मैं बहुतरूप होऊं तब उस इच्छा द्वारा—

"तदपोऽसृजत"

अपने में जलतत्त्व का स्वरूप रचा। उसमें जीवरूप से प्रवेश करके पुनः—

"ता आप ऐक्षन्त वह्वयः स्याम प्रजायेमहीति"

जलतत्त्व द्वारा इच्छा किया कि मैं बहुतरूप होऊँ। तब—

"ता अन्नमसृजन्त"

उस इच्छा द्वारा अपने में अन्न को अर्थात् सर्व अन्न की समष्टिरूप पृथिवी को रचा। उसमें जीवरूप से प्रवेश करके पृथिवीतत्त्व द्वारा पुनः इच्छा किया। उस इच्छा द्वारा—

"तद्व्यन्नाद्यं जायते"

व्रीहियवादि व्यष्टि अन्नरूप अपने में रचा। उस अन्नद्वारा पुनः—

"तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्यण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति"

सम्पूर्ण चराचर प्राणिमात्र जो अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज तीन प्रकार से किंवा स्वेदजयुक्त चार प्रकार से पूर्ण हैं। उसका स्वरूप अपने में रचा, इन सर्व श्रुतियों का विशेषार्थ इस ग्रंथकार के किये मुमुक्षुमनोरंजनी नाम ग्रंथ, जो छान्दोग्य उपनिषद् के ६ प्रपाठक की भाषाटीका है, उसमें है। यहाँ केवल सूचनामात्र अर्थ लिखा है।

हे सौम्य! इस प्रकार परमात्मा ने अपनी सर्वशक्तिमत्तारूपी लीला को देखने के अर्थ अपनी इच्छा से अपने ही में अग्नि आदि किंवा आकाशादि तृणपर्यन्त स्थूल सूक्ष्म विशेषरूप को धारण

किया और उसमें आप ही जीवरूप से प्रवेश किया । तथाच--

"अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य"

(छां० उ० ६ प्रपाठक ३ श्रुति ।)

तथा—

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"

(तैत्तिरीय उ० ब्रह्मानन्दवल्ली ६ अनुवाक ।)

तथा—

"सएतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत"

(ऐतरेय उ० ३ खंड १२ श्रुति ।)

अर्थात् उस परमात्मा ने अग्नि आदि किंवा आकाशादि भूतों को सृजकर उसमें प्रवेश कर उनके त्रिधाकरण किंवा पंचीकरण द्वारा नामरूपात्मक सम्पूर्ण जगत् को सृजकर उसमें चैतन्य आत्मारूप से आप ही प्रवेश किया । उस प्रवेश द्वारा सर्व का प्रकाशक प्रेरक साक्षी हो संपूर्ण नामरूप क्रियात्मक लीला द्वारा अपनी सर्वशक्तिमत्ता को विशेषरूप से पृथक् पृथक् आपही अनुभव किया । जैसे परमात्मा ने प्रथम आकाशतत्त्व का स्वरूप अपने में धारण किया उसमें आई जो अपनीही पूर्णता, निर्विकारता, निर्लिपता, अवकाशता आदि शक्ति, उसको सर्वात्मसाक्षीरूप से आप ही अनुभव किया । वैसे ही आकाशतत्त्व द्वारा वायुतत्त्व का स्वरूप अपने में धारण कर उसमें आई जो अपनी स्पंदता, निःस्पंदता, सूत्रता,

त्रमणता आदि शक्ति उसको सर्वात्मसाक्षीरूप से आप ही अनुभव किया। ऐसे ही पुनः वायुतत्त्व द्वारा अग्नितत्त्व का स्वरूप अपने में धारण कर उसमें आई जो अपनी ही दाहकता, प्रकाशकता, पाचकता और काष्ठादिकों में सामान्यरूप से रहकर उसको भस्म न करना और उनके मंथन द्वारा विशेषरूप से प्रकट हो आधारभूत काष्ठ को भस्मकर अपने समानस्वरूप को प्राप्त होना इत्यादि शक्ति उस को सर्वात्मसाक्षीरूप से आप ही अनुभव किया। ऐसे ही अग्नितत्त्व द्वारा जलतत्त्व का स्वरूप अपने में धारण कर उसमें आई जो अपनी ही शीतलता, द्रवता, प्रवाहकता आदि शक्ति, उसको सर्वात्म साक्षीरूप से आप ही अनुभव किया। वैसे ही जलतत्त्व द्वारा पृथिवीतत्त्व का स्वरूप अपने में धारण कर उसमें आई जो अपनी ही कठोरता, निश्चलता, अन्नोत्पादिता, स्थूलता, धारणता आदि शक्ति उसको सर्वात्मसाक्षीरूप से आप ही अनुभव किया। उस अन्न की समष्टितारूप पृथिवी अपने में व्रीहियवादि व्यष्टि अन्न का स्वरूप अपने में धार उस द्वारा अपनी पूर्व की—

"बहुस्यां प्रजायेयेति"

इस इच्छा द्वारा अपने में देवतादि तृणपर्यंत चार खानि रूपा सृष्टि का विशेषरूप धारण कर उसमें आत्मरूप से प्रवेश कर अपनी प्रथम की ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति आदि की पुनः विशेषता से सम्पूर्ण अपनी नामरूप क्रियात्मक लीला को देखा।

और उस लीला द्वारा अपनी स्थूल सूक्ष्म सामान्य विशेष प्रकट अप्रकट आदि सर्वशक्तिमत्ता को अनुभव किया।

इससे हे सौम्य! इत्यादि प्रकार से जिस जिसमें जो जो शक्ति है, सो सर्व परमात्मा की ही हैं और वह वस्तु कि जिसमें शक्ति है वह भी परमात्मा ही है और उसमें आप ही चैतन्यरूप से प्रवेश कर सर्वका अनुभव करता है। इससे अभिप्राय यह है कि जो शक्ति है वह और जिसमें शक्ति है वह और उसका जो अनुभवी है वह सर्व परमात्मा ही है। उससे इतर इस स्थूल सूक्ष्म जड़ चैतन्य सम्पूर्ण प्रपंच में एक परमाणुमात्र भी नहीं; क्योंकि सृष्टि के पूर्व एक अद्वैत परमात्मा ही था और कुछ भी न था। सो कैसा था। जो परिपूर्ण था, उसके अस्तित्त्व विना खाली जगह न थी कि जो आकाशादि सर्व सृष्टि के स्थित्यर्थ अवकाशरूप माना जाय और उस परमात्मा से इतर उपादान भी न था कि जिस करके घटवत् सृष्टि रची जाय और उससे इतर निमित्त कारण भी न था कि जो सृष्टिरचना में दंड चक्रादिवत् निमित्त सामग्री मानी जाय।

इससे हे सौम्य! इस संपूर्ण प्रपंच का आधार उपादान निमित्त आदि सर्व परमात्मा ही है। जैसे स्वप्नसृष्टि का आधार उपादान निमित्त सर्व अनुभव ही है, अनुभव से इतर स्वप्नसृष्टि नहीं। ऐसे ही परमात्मा से इतर यह जगत् नहीं। तथा च—

"सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म 'चिदिदं सर्व्वं' 'सदिदं सर्व्वं'

'पुरुष एवेदं सर्व्वं' 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं' 'ॐकार एवेदं सर्व्वं' "यद्भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव सर्व्वम्"

इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण करके संपूर्ण नामरूपात्मक जगत्‌रूप से अपनेआप में अभेदता से एक परमात्मा ही सुशोभित है।

इससे हे सौम्य! संपूर्ण चराचर जगत् परमात्मा का अवताररूप ही है। बिना परमात्मा के विशेषरूप धारण किये उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रत्यक्ष अनुभव होने की नहीं, क्योंकि परमात्मा महासूक्ष्म निर्विशेष है। इससे वाणी आदिकों का विषय नहीं। उसमें जो ब्रह्म आत्मा परमात्मा परमेश्वर आदिक नाम कहते हैं, सो सर्व ऋषि, मुनि, आचार्यों ने उपदेशार्थ लाक्षणिक कल्पना किया है, वास्तव में उसमें पृथक् करके नाम लेनेवाले सहित नामरूपादिकों का अभाव है। एतदर्थ परमात्मा मन, वाणी आदिकों का विषय न होने से श्रुति ने 'नेतिनेति' द्वारा नामरूपादि जो उससे पृथक् करके भासते हैं, उसकी पृथक् सत्ता को गिरा सर्व की अवधि सर्वाधिष्ठान अस्तिमात्र लक्ष्य कराया है। तथाच—

"नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते"

(कठवल्लीउ० ६ वल्ली १२ श्रुति।)

उस परमात्मा में सर्वशब्द के अर्थ का अभाव होने से सर्व-

शक्तिमत्ता का विशेषण बने नहीं, क्योंकि विशेष्य के अभाव से विशेषण कहना असत्य है ।

हे सौम्य ! एतदर्थ जब परमात्मा अपनी इच्छा से सर्वशब्द का अर्थ विशेषसमुदाय जो नामरूपात्मक जगत् है उसको धारण करके अपनी सर्वशक्तिमत्ता को प्रकट करे है उसको जब श्रुतियों के प्रमाणपूर्वक स्वीकारकरें तब उसमें सर्वशब्द के अर्थ को लेकर सर्वशक्तिमत्ता का विशेषण कहना यथार्थ है। और परमात्मा में विना सर्वशब्द का अर्थ, जो विशेषता, उसको स्वीकार किये निर्विशेष परमात्मा में सर्वशक्तिमत्ता का विशेषण कहना बने नहीं ।

इससे हे सौम्य ! जो कोई पुरुष परमात्मा में सर्वशब्द का अर्थ जो विशेषसमुदाय उसका अभाव मानते हैं अर्थात् कहते हैं कि परमात्मा सर्वरूप नहीं, वह सर्व के अभाव से निर्विशेष ही है। वह सर्वशक्तिमान् है सो उन पुरुषों का ऐसा कहना प्रमाण करने योग्य नहीं ।

हे सौम्य ! परमात्मा ने पूर्व से जिस प्रकार अपनी नीति शक्ति को स्थापित किया है सो वैसे ही होता है अन्यथा कदापि नहीं होता । जो पृथक् पृथक् विशेषरूप के धारण किये विना अपनी विशेषशक्ति का प्रकट होना नहीं । सो तैसे ही होता है ।

हे सौम्य ! परमात्मा सर्वशक्तिमान् होतेहुए भी अपनी नीति को उल्लंघन करता नहीं । इससे धर्मरक्षक जो परमात्मा की शक्ति है वह उसके अवतारशरीरों द्वारा ही प्रकट होती है, अन्यथा नहीं ।

इससे जो कोई पुरुष कहते हैं कि परमात्मा सर्वशक्तिमान् है वह विना ही अवतार धारण किये सर्व कुछ करने को समर्थ है। सो पुरुष परमात्मा की आदिनीति को विचारे विना बोलते हैं। क्योंकि परमात्मा सर्वशक्तिमान् सर्वकार्य में समर्थ है तथापि स्त्री पुरुष के निमित्त विना प्रजोत्पादन करता नहीं, और अन्नजल के निमित्त विना प्रजापालन करता नहीं। और रोगादिकों के निमित्त विना प्रजा का अभाव करता नहीं।

इससे हे सौम्य! इत्यादि प्रकार से जो जो परमात्मा करता है सो सो सर्वनिमित्त की विशेषता द्वारा ही करता है, यह उसकी आदि नीति है। इससे परमात्मा जो धर्म रक्षण करे है वह भी अवतारशरीरों की निमित्तता से ही करे है। एतदर्थ अभिप्राय यह है कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने आदि यही नीति स्थापित किया है कि अपनी निर्विशेषशक्ति को अपने में विशेषरूप धारण करके ही अनुभव करें। सो वैसे ही होता है अन्यथा नहीं होता। इससे परमात्मा को जो धर्मपालनात्मकशक्ति है, सो अवतारशरीरों द्वारा ही प्रकट होती है, अन्यथा नहीं। और जिन शरीरों द्वारा धर्मरक्षणात्मकशक्ति प्रकट होती है वही अवतारशरीर कहे जाते हैं। इससे परमात्मा का अवतार मानना योग्य है। और जो कोई पुरुष कहते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा विना ही विशेषरूप के धारण किये सर्वकुछ करता है, उसको अवतार होने की आवश्यकता नहीं, सो उन पुरुषों का वाक्य मानने योग्य

नहीं; क्योंकि उनके वाक्य में कोई प्रमाण और दृष्टान्त नहीं ।
इससे हे सौम्य ! सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपने में विशेषरूप धारण करके उस द्वारा अपनी सर्वशक्ति को पृथक् पृथक् प्रकट कर अनुभव करे है इससे परमात्मा ने अपनी सर्वशक्ति को प्रकट अनुभव करने के अर्थ अपने में आकाशादि जो जो विशेषरूप धारण किये हैं सो सर्व सामान्यता से परमात्मा का ही अवतार है । सो सर्व महाकल्पपर्यंत रहते हैं इससे उनको नित्य अवतार कहते हैं । उस नित्य अवताररूप जगत् में सर्व प्रजा के कल्याणार्थ जो धर्मरूप से क्रिया स्थापित कियाहै, उस धर्मकी असुरों द्वारा जब जब हानि होती है तब तब परमात्मा अवतारशरीर धारण कर धर्मरक्षण करता है, और धर्मरक्षणोत्तर पुनः उस शरीरको अपने निर्विशेष स्वरूपमें तिरोधान करता है । इससे उस अवतारशरीर को नैमित्तिक अवतार कहते हैं । क्योंकि उन अवतारशरीरों का होना निमित्त पाकर है । तथाच—

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्"

इत्यादि । (भगवद्गीता)

इससे निर्विशेष परमात्मा अपने में राम कृष्णादिरूप से विशेषरूप धारण करके अपनी धर्मरक्षणात्मक शक्ति को प्रकट करे है ।

इससे हे सौम्य ! रामकृष्णादिकों को धर्मरक्षक सर्वोत्तम ईश्वरावतार मानना सिद्ध और प्रमाण हुआ । इति सिद्धम् २ ॥

शिष्य।

हे भगवन्! आपने श्रुतियुक्ति अनुभव दृष्टान्त प्रमाणपूर्वक सम्पूर्ण सचराचर जगत् को उसकी पृथक् सत्ता के अभाव से एक परमात्मसत्ता ही प्रतिपादन किया और उस द्वारा सम्पूर्ण जगत् को सामान्यता से परमात्मा का अवतार प्रतिपादन किया। और परमात्मा के जगत्रूप विशेष अवयवों द्वारा परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता प्रतिपादन किया सो सर्व यथार्थ है क्योंकि अव्याकृतादि तृणपर्यंत सम्पूर्ण चराचर कार्य कारणात्मक जगत् के पूर्व एक अद्वैत परिपूर्ण परमात्मसत्ता ही रही, उस परमात्मसत्ता से सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। सो सर्व वास्तव में परमात्मसत्ता ही है। उसी द्वारा परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता प्रत्यक्ष जानने में आती है। इससे सामान्यता करके सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का नित्य अवतार है, ऐसा आपने प्रतिपादन किया। सो भी यथार्थ है, और परमात्मा के जगत्रूप नित्य अवतार में धर्मरक्षा के अर्थ रामकृष्णादिरूप से परमात्मा का नैमित्तिक अवतार होना आपने प्रतिपादन किया उसमें हमको कुछ संशय है क्योंकि परमात्मा ने अपनी इच्छा से अपने ही में जो जो आकृति धारण किया है सो सर्व सामान्यता करके परमात्मा का अवतार आपने कहा है। ऐसे ही रामकृष्णादिक भी सामान्य अवतार हैं परन्तु उनको सर्व सामान्य अवतार की अपेक्षा में सर्व से अधिक ईश्वर करके मानते हैं, सो अयोग्य है।

और आपने कहा कि धर्म रक्षणार्थ रामकृष्णादि रूप से ईश्वर ने अवतार धारण किया है । सो बने नहीं; क्योंकि ईश्वर ने अपने अवयवभूत जगत्रूप प्रजा के हितार्थ जिस धर्म को स्थापित किया है उस अपने अपने धर्म की रक्षा सब कोई करते हैं। इससे सर्व प्रजा के धर्मरक्षणार्थ भी रामकृष्णादिरूप से ईश्वर का पृथक् अवतार होना बने नहीं । और रामकृष्णादिकों का उत्पत्ति होना आकाशादिकोंवत् नहीं किन्तु उनका उत्पन्न होना माता पिता द्वारा शास्त्रकारों ने प्रतिपादन किया है और उनमें शोकमोहादि जीव धर्म-शास्त्र द्वारा विदित हुआ है और उनमें ईश्वरीशक्ति जगत्कर्तृत्वा-दिकों का अभाव है इससे उनको ईश्वरावतार करके मानना और कहना हमारे विचार से योग्य नहीं । इससे हे प्रभो ! इस विषय में भी श्रुति प्रमाणपूर्वक जैसी हो तैसी आज्ञा करिये कि जिस करके अवतार विषयक संशय निवृत्त हो ।

गुरु ।

हे सौम्य ! अब तुमने तीन प्रश्न किये हैं । तहाँ प्रथम यह है कि ईश्वर के जगत्रूप सामान्य अवतार में रामकृष्ण आदि भी सामान्य अवतार हों तो हों परन्तु उनको सर्व से अधिक ईश्वरकरके मानना योग्य नहीं । अब उसका उत्तर श्रवण करो—

हे सौम्य ! सामान्यता करके संपूर्ण सचराचर जगत् एक पर-मात्मा का ही अवयवभूत अवतार है, उसमें संशय नहीं, तथापि

परमात्मा के जगत्रूप सामान्य अवतार में, जिसमें परमात्मा की जिस शक्ति की विशेषता होती है, वह उस शक्ति की विशेषता द्वारा सर्व सामान्य की अपेक्षा विशेष मंतव्य होता है । देखो सर्व सामान्य जीवों की अपेक्षा इस मनुष्य शरीर में ईश्वर की विवेकादि शक्ति की विशेषता है । इससे सर्व जीवों की अपेक्षा मनुष्य सर्व से उत्तम मंतव्य है, और उन उत्तम सामान्य मनुष्यों में जो विद्या, वर्ण, शील, रूप, कुल, शांति आदि परमात्मा की दैवी सम्पद्रूप शक्ति की विशेषता करके युक्त होता है, सो विशेष उत्तम मंतव्य होताहै । उन विशेष उत्तम सामान्य मनुष्यों में जो पुरुष परमात्माकी धर्म प्रजापालनादि और साहस, उदारता, ऐश्वर्यता आदि परमात्मा की उत्तम शक्ति करके युक्त हो तो उक्त शक्ति की विशेषता से सामान्य विशेष उत्तम मनुष्यों की अपेक्षा में वह मंडलेश्वर उत्तमोत्तम मंतव्य है, और उन सामान्य मंडलेश्वर राजाओं की अपेक्षा में उन मंडलेश्वरों का अधिपति चक्रवर्ती राजाधिराज परमात्मा की उत्तम शक्तियों के अंश की विशेषता सम्पन्न होने से शास्त्र प्रमाण—

"नाविष्णुः पृथिवीपतिः"

तथा—

"नराणां च नराधिपः"

(गीता अ० १० के श्लोक में)

सर्वमंडलेश्वरादि मनुष्योंकी अपेक्षा ईश्वरांश मंतव्यहै और मानते हैं।

हे सौम्य ! ईश्वर के जगत्‌रूप सामान्य अवतारों में जिस जिस विषे परमात्मा की शक्ति की जिस जिस प्रकार न्यूनाधिक्यता है उस उस अंश को लेकर उन उनमें उत्तम मध्यमता की तारतम्यता है । सो सर्व यथाविभाग मंतव्य है । और रामकृष्णादि परमात्मा के नैमित्तिक विशेष अवतार हैं । उनमें अति उत्तम परमात्मशक्ति की बाहुल्यता है वहाँ प्रथम अयोनि में संभव शक्ति । दूसरे अपने भक्तों को अभीष्टरूप से दर्शन दे मनोरथ सिद्ध करने की शक्ति । तीसरे अपनेमें काममोहादि मुद्रा को देखाते हुए निष्काम निर्मोहादि स्वभाव शक्ति । चतुर्थ वर के वश से गर्वित जगद्द्विजयी असुरों का नाश करने की शक्ति । पंचम अपने स्थापित किये धर्म प्रजा की पालन शक्ति । षष्ठ सर्व मंडलेश्वरादि राजाओं के शिरोमणि महाराजाधिराजत्वशक्ति । सप्तम रूप, गुण, विद्या, उदारता आदि शक्ति । अष्टम सर्वोत्तम मोक्ष साधक जो ब्रह्मविद्या उसका उपदेश कर अधिकारी जिज्ञासु को 'तत्त्वमस्यादि' महावाक्य द्वारा ब्रह्म आत्मा का अभेद ज्ञान उपदेश कर मोक्ष करने की आचार्यत्वशक्ति ।

हे सौम्य ! इत्यादिक जो परमात्मा की सर्वोत्तम शक्ति उसके अंशों की आधिक्यता से सर्व सामान्य अवतारों की अपेक्षा में रामकृष्णादि विशेष नैमित्तिक अवतारों को सर्व से श्रेष्ठ ईश्वर अवतार मंतव्य योग्य है और मानते हैं ।

हे सौम्य ! इस प्रकार परमात्मा के जगत्‌रूप सामान्य अवतार के

आविर्भाव विशेष अवतार को विचारकर परमात्माकी सर्वोत्तम शक्तिकी विशेषता से रामकृष्णादि सर्वोत्तम अवतार हैं । सो चाहे अयोनिसंभव, चाहे सयोनिसंभव हैं तथापि उनमें परमात्मा की सर्वोत्तमशक्ति की बाहुल्यता से वह ईश्वरअवतारही मंतव्य है । उसको कुतर्कियों के वाक्य के त्यागपूर्वक आस्तिकरीत्या भलीप्रकार विचार करो ।

हे सौम्य ! अब अपने द्वितीय प्रश्न का उत्तर श्रवण करो-- तुमने कहा कि ईश्वर ने सर्व प्रजाके अर्थ सर्वका रक्षक जिस धर्मको उत्पन्न किया है उस अपने अपने धर्मकी रक्षा सर्व कोई करते ही हैं इससे धर्मरक्षणार्थ रामकृष्णादिरूप से ईश्वर का अवतार होना संभव नहीं । अब उसका समाधान भी श्रवण करो--

हे सौम्य ! ईश्वरकी आदि नीति जैसी है वैसे ही होता है, अन्यथा नहीं होता । परमात्मा की जो वाक्य सिद्धता अरु दयालुता, उदारता आदि शक्ति हैं वह जिन जिन देवता, मुनि, तपस्वियों के द्वारा प्रकट होती हैं वह वह ईश्वर के अंशावतार हैं । उनको तप, विनय आदि सेवासे प्रसन्न करके अपने अभीष्टसिद्ध्यर्थ उनके वाक्यवरदान पाकरके उसके आश्रय अजर, अमर, अभय, जगद्विजयी हो, देव, ब्राह्मण, संतोंके द्वेषी स्वयं अपने आपको ईश्वर मान, देवतादि सर्व प्रजा को अपने अनुकूल मार्गों में वर्ताते हैं और आप ब्राह्मणादि उत्तम कुल में उत्पन्न होते हुए भी केवल बाह्यक्रिया यज्ञ, अग्निहोत्रादि करके किंचित् धर्ममुद्रा

अपने में दिखाते हैं परन्तु अन्तःकरणमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, मत्सरता, अहंकारादि आसुरी संपदा करके पूर्णता से युक्त हैं उन असुरराजा हिरण्यकशिपु रावणादिकों के राज्य की प्राबल्यता में सामान्य प्रजा अपने अपने सनातनीय धर्म की रक्षा में समर्थ नहीं होते क्योंकि उन वर-बल-गर्वित असुरों को वरदान है कि जो ईश्वरांशावतार ज्येष्ठ श्रेष्ठों से प्राप्त किया है उसकी निष्फलतापूर्वक असुरों का वध करके जो धर्मरक्षण कर्तव्य है तिसको समर्थ नहीं। देखो कश्यप ऋषि का पुत्र हिरण्यकशिपु जाति करके उत्तम ब्राह्मण, यज्ञादि, कामुक बाह्यकर्म का कर्त्ता था परन्तु अंतःकरण के स्वभाव करके सर्व आसुरी संपदा से युक्त था। देव ब्राह्मणादिकों का विघातक था उस हिरण्यकशिपु ने सनातनीय सर्वोत्तम सर्वात्मभाव धर्म को आश्रयकर्त्ता प्रह्लाद नामक अपने पुत्र को सनातनीय सर्वोत्तम धर्म में प्रवृत्त रहने के कारण, कई बार अनेक प्रकार से उसके प्राणघात करने का उद्योग किया, परंतु जिसका सर्व प्रकार से ईश्वर रक्षक है उसका विघात कैसे हो ? अर्थात् नहीं होता। ऐसा विचार के ईश्वर ने हिरण्यकशिपु के सर्व उद्योग निष्फल किये। और परिणाम में जिस प्रकार से उसके सर्व वरदानों की निष्फलता होती जानी उसी प्रकार परमात्मा ने अपने में आकृति धारणकर देशकालादि सर्व को अनुरूप कर, श्रीनरसिंहरूप से उस धर्मविघातक असुर

का वध कर धर्म, देव, ब्राह्मण, संत आदिकों की रक्षा किया। इससे हे वादी ! इस नीति प्रमाण से वर-बल-गर्वित असुर राजाओं के जो ईश्वरी शक्तिमान् ज्येष्ठ श्रेष्ठों द्वारा प्राप्त किये वरदान थे उनको जिस प्रकार से परमात्मा निष्फल होते जानते हैं वैसे ही देशकाल, आकृति आदि सामग्री निमित्त करके वरदान की निष्फलतापूर्वक धर्मविघातक असुरों का वध करके धर्मादिकों की रक्षा करते हैं।

हे सौम्य ! तुमने कहा कि सर्व प्रजा अपने अपने धर्म की रक्षा करती हैं इससे धर्म रक्षणार्थ भी ईश्वर का रामकृष्णादि रूप से अवतार होना बने नहीं। सो तुम्हारी कुतर्क बने नहीं इससे तुम्हारे तर्क के समाधान में जो परमात्मा की नीति तुम से कही उसका विचार करो जिससे तुम सरीखे कुतर्कियों की तर्क के अभावपूर्वक सर्व आस्तिक धर्म तुमको ज्ञात हो।

हे सौम्य ! तृतीयतर्क तुम्हारा यह है कि रामकृष्णादिकों का उत्पन्न होना माता पिता के द्वारा है और उनमें शोक मोहादि अज्ञानलक्षण शास्त्र द्वारा विदित हुए हैं तथा उनमें जगत् कर्तृत्वादि ईश्वरीशक्ति का अभाव है इससे रामकृष्णादिकों को ईश्वर अवतार करके मानना योग्य नहीं है। हे सौम्य ! इस तुम्हारे तर्क के आवान्तर तीन तर्क हैं उसका उत्तर भी संक्षेपमात्र क्रमपूर्वक श्रवण करो।

हे सौम्य ! जिन ग्रंथों में राम कृष्ण अवतार के शरीर के माता

पिना प्रतिपादन किये हैं उन्हीं ग्रंथों में उनको अयोनिसंभव भी लिखा है उसका विचार करो । देखो परमदयालु कृपासागर भक्तवत्सल स्वजन-मनोभीष्ट-सिद्धकर्त्ता परमात्मा, जो कि सर्वप्रकार के आकार-विकार-रहित परम शांत चैतन्यतत्त्व है उसको विशेषरूप से अवलोकन करने की कामना से शमदमादिपूर्वक तप, यज्ञ, दानादि जे ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं उनको श्रद्धापूर्वक भलीप्रकार करते हैं तब परमदयालु परमात्मा श्रद्धा, प्रीति, शुद्ध भावना, तप आदि धर्माचरणपूर्वक अपने में देख, अपनी भक्तवात्सल्यता को विचार उन भक्तों के अभीष्ट सिद्ध्यर्थ, जो दृष्टि का विषय न होकर भी सर्व का द्रष्टा है वह जलतरंगवत् अपने में "पुरुरूपो विवत्तामन्वयम्" इस श्रुति के प्रमाण से अति शोभनीय द्विभुज किंवा चतुर्भुजादि अनुपम अलौकिक अकृत्रिम मनुष्याकृति धारण कर, भक्तों को दर्शन दे, उनके सर्व अभीष्ट सिद्ध करते हैं । तब अपने अभीष्ट को पाय परमानंदित चित्त ईश्वर के स्वरूपलावण्यता से आकर्षित मन जो भक्त हैं वे उस काल में ईश्वरस्वरूप में जिस प्रीतियुक्त अपने मन की स्थिति पाते हैं वह वाणी का विषय नहीं । और सोई सगुण उपासक की मुक्ति है । जिस प्रीति के वश "लाभाल्लोभः प्रजायते" इस न्याय के प्रमाण से जो जगत् का लालन-पालन करनेवाला परमात्मा है उसको अत्यन्त प्रीति से अहर्निश लालन पालन अवलोकन करें, ऐसी प्रीति उपजे है तब "मनसोमनः" इस श्रुतिवाक्य प्रमाण से मनका भी

मन मनमें रहनेवाला सर्वांतर्यामी परमात्मा सो अपने भक्त के मन की जो अत्यन्त शुद्ध भावना प्रीति सो अपने ही में जानकर अपने श्रीमुख से अत्यंत गंभीर मधुरवाणी से वरंब्रूहि वरदान माँगो अर्थात् जो अभीष्ट हो सो मांगो ऐसी आज्ञा करते हैं। तब ईश्वर के इस वाक्य श्रवण से हर्षित चित्त भक्तजन अपना जो ईश्वर में अभीष्ट है सो याचना करते हैं तब परमात्मा उनको अभीष्ट वरदान दे अपने विशेष स्वरूप को सामान्य स्वरूप में अंतर्द्धान भी करते हैं।

जहाँ जिन जिन भक्तों ने परमात्मा से ये वरदान मांगे हैं कि हे भगवन्! हे कृपासागर! हे भक्तवत्सल! हे दीनदयालो! आपकरके रचित इससंसार में प्राणधारी जीवों को जितनी प्रीति पुत्रों में आपने नियत किया है उतनी अन्य में नहीं यह आपकी आदिनीति है सो अनिवार्य है। और हमको अपनी प्रीति सर्वप्रकार से आपके स्वरूप लावण्यता में अभीष्ट है इससे हे भगवन्! आप हमारे पुत्र होवो।

हे सौम्य! इस प्रकार जब भक्तजन अपने अभीष्ट सिद्ध्यर्थ परमात्मा से वरदान याचना करते हैं तब उनके मनोरथ सिद्ध्यर्थ उसी जन्म में किंवा अन्य जन्म में अपने दिये वरदानानुकूल देश काल आदिकों की अनुकूलता से अपनी माया करके उन भक्तों के यहाँ गर्भरूप से प्रतीत होता है तब अपनी स्थापित करी मनुष्य जन्मोत्पत्ति काल की "दश वा नव मासान्तः" इस छां० उ० के पंचम प्रपाठक के, पंचाग्नि विद्या की श्रुतिप्रमाण से दश व नव मास

की अवधि है उस काल को देख, विचार कर पुनः परमात्मा उसी स्वरूप से कि जिस स्वरूप से पूर्व वरदानकाल में दर्शन दिया है उस अनन्त भाग्यशाली पुण्यागार जो कि पेशीरूपायाः करके गर्भवती है उसको दर्शन दे अपनी प्रतीति कराय गर्भप्रति अपनी बालमाया को आकर्षण कर, तदाश्रित अपने में बालक स्वरूप प्रतीत करावते हुए अपने दिये वरदान की साफल्यता और भक्त के मनोरथ सिद्ध्यर्थ स्तनपान रुदनादि लीला को करते हैं । इससे हे सौम्य ! परमात्मा का जो रामकृष्णादि रूप से अवतार होना है उसमें माता पिता द्वारा उनका होना जो शास्त्रकारों ने प्रतिपादन किया है सो केवल परमात्मा की मायाशक्ति को देखाया है । जो सर्वशक्तिमान परमात्मा अपने दिये वरदान और भक्त के मनोरथ की साफल्यता के लिये गर्भादि माया को देखाय बालक्रीड़ादि लीला को करते हैं । और आप अज परमात्मा कदापि जन्मभाव को नहीं पाते । तथाच—

"न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्" इत्यादि क० उ० वल्ली १८ (श्रुति)

इससे हे सौम्य ! जिन ग्रन्थों में रामकृष्णादिकों के माता पिता प्रति-पाद्य हैं उन्हीं ग्रन्थों में उनको अयोनि संभव भी लिखा है, इससे इसका कहे प्रकार विचारपूर्वक रामकृष्णादिकों के विषय में ईश्वर अवतार होने का निश्चय करो । और जो कदापि उनको सयोनि संभव ही मानोगे तो भी—

"यो रेतसि तिष्ठन् रेतसमंतरोयं स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः ॥"

इत्यादि वृ० उ०

श्रुति प्रमाण से सामान्यरीत्या भी उनका ईश्वर अवतार होना सिद्ध है। और उसमें भी प्रथम कहे प्रकार ईश्वर के ऐश्चर्य-शक्ति की विशेषता-जो शास्त्रकारों ने प्रतिपादन किया है-होने से सर्व सामान्य अवतार की अपेक्षा में भी विशेष करके मंतव्य है और मानते भी हैं सामान्य प्रजा और राजवत् । एवं जो गर्भ द्वारा उपजता है सो शरीर-उपजता है आत्मा नहीं उपजता । आत्मा तो महासूक्ष्म, उत्पत्ति प्रलय से रहित, अज, अविनाशी, सदा सत्यरूप है । इससे हे सौम्य ! सिद्धान्त यह है कि रामकृष्ण के अवतार शरीर अयोनिसंभव ही हैं माता पिता द्वारा सयोनि संभव नहीं । और जो कदापि तुमको उनके सयोनिसंभव में ही आग्रह है तो भी उनमें ऐश्वर्य शक्ति की विशेषता होने से वह ईश्वर अवतार ही सिद्ध है । इति सिद्धम् ।

हे सौम्य ! और श्रवण करो रामकृष्णादि ईश्वर अवतार में जो शोक, मोहादि अज्ञातलक्षण मुद्रा देखाई हैं सो केवल लोक के उपदेशार्थ ही देखाई हैं । वास्तव में उनमें शोक मोहादि नहीं । जैसे कोई असाधु पुरुष अपने प्रयोजन के सिद्ध्यर्थ किसी सत्पुरुष के आगे आर्जवता आदि साधु मुद्रा को अपने में देखावे है परंतु उस साधुमुद्रा को बाह्य देखावने से उस असाधु पुरुष को जाननेवाले

जो विवेकी पुरुष हैं सो उस असाधु को साधु नहीं मानते । ऐसे ही राम कृष्णादि अवतार शरीर करके देखाई जो लोक के उपदेशार्थ अपने में शोक मोहादि अज्ञान लक्षण वाह्यमुद्रा उसको सविवेकी ज्ञानवान् पुरुष उन अवतारशरीरों में शोक मोहादिकों की सत्यता मानते नहीं ।

हे सौम्य ! देखो जब कि पंचवटी में रावण ने कपट से संन्यासी का वेष धारण कर श्रीरामजी की परोक्षता में रामपत्नी जानकी का हरण किया, तब प्रिया के विरह में रामचन्द्र ने रुदनमुद्रापूर्वक जानकी अन्वेषण में वृक्षादि जड़ों से प्रश्न कर अपने में शोक-मोह की मुद्रा देखाई उससे धर्मरक्षणार्थ सर्व प्रजा को यह उपदेश किया कि जानकी ऐसी पतिव्रता साध्वी स्त्री कि जिसने अपने श्वशुर और पिता के गृह का सर्व राज्य-वैभव सुख त्याग कर केवल पतिसेवा-परायण हो अति दुःखरूप वन में निःशंकता से पति के साथ गमन किया इससे पतिव्रता । और जिस पत्नी के होने से स्वर्गसाधक यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म के करने का अधिकारी पुरुष होता है इससे यदि ऐसी साध्वी पत्नी का जो किसी प्रकार से वियोग होवे तो कर्माधिकारी पुरुष को कर्म का फल जो स्वर्ग उसकी प्राप्ति के साधन में विघ्न होने से उस पतिव्रता साध्वी स्त्री के लिये शोक कर्तव्य है । और रामचंद्र की शोकावस्था को देख श्रीशिवप्रिया सती ने ईश्वर अवतार की परीक्षा के लिये जानकी

का स्वरूप धारण कर रामजी के सम्मुख हो कहा कि मैं सीता तो विद्यमान हूँ तब यह हा सीता ! हा सीता ! करते हो सो इसका कारण क्या ? तब रामजी ने जानकी विरह और उसके अन्वेषण काल में जानकी वेष में सती को देख परमपूज्य शिवजी की प्रिया जान प्रणाम करके कहा कि हे जगदम्बा ! इसका कारण स्वामी शिवजी से पूछना । इसप्रकार जब रामजी ने कहा तब सती लज्जावती हो अन्तर्द्धान हुई ।

हे सौम्य ! अब विचार करके देखो जब कि रामजी जानकी के विरह से अत्यन्त व्याकुल होकर रुदन-मुद्रापूर्वक अन्वेषण करते वृक्ष पाषाणादि जड़ों से प्रश्न करते फिरे उस शोक, मोह, अज्ञान लक्षण अवस्था में, जिसके विरह से यह अवस्था प्राप्त हुई, उसी जानकी के रूप से सती को देखा और उसमें पत्नीत्वभाव न लाकर उसके वास्तविक स्वरूप को जानि जगदंबा विशेषण दे प्रणाम करके कहा कि इसका कारण अपने पति शिवजी से पूछना सो यह अत्यंत शुद्ध विवेक बने नहीं । क्योंकि शोक मोहादिरूप अज्ञानलक्षण का और शुद्ध विवेक का परस्पर तेजतिमिरवत् विरोध है । इससे एक कालमें इन दोनों का समुच्चय होना बनता नहीं अतः रामचन्द्र में जे शोकमोहादि प्रतीत हुए वे केवल बाह्यमुद्रा लोकोपदेशार्थ ही हैं वास्तव में नहीं । और सती की लीला से यह उपदेश किया है कि धर्मात्मा पुरुष को कैसी ही आपत्ति प्राप्त हो, उसके होते हुए भी

विवेक का त्याग न करे । और अपनी पत्नी के अभाव में भी अन्य पत्नी स्वयं अपनी प्रसन्नता से आकर प्राप्त हो तो भी उसको माता समान जानकर प्रणाम करे, परन्तु उसको पत्नीभाव से अंगीकार न करे अर्थात् एक पत्नीव्रत में परायण रहे ।

हे सौम्य ! जिस जानकी के विरह से व्याकुल अत्यन्त शोकवान् रामजी ने जब अनेक प्रयत्न से स्वपत्नी-हरणकर्त्ता रावण का ससेन सपरिवार के नाश किया तब विभीषण हनुमान् आदि रामजी की आज्ञा से जानकी को रामजी के समीप ले आये उस काल में उस जानकी को, कि जिसके विरह से व्याकुल पंचवटी में रुदनपूर्वक अन्वेषण करते जड़, वृक्ष, पाषाणादिकों से प्रश्न करते फिरे, परगृह में रहने के कारण धर्ममर्यादा से त्याग किया तब उस धर्मधुरन्धर रामजी के विषय में शोक मोह का आरोप असत्य है सो अविवेकी अज्ञानी करते हैं ।

हे सौम्य ! जब रामजी ने स्वपत्नी सीता का त्याग किया तब अत्यंत खेद को प्राप्त हुई पतिव्रता साध्वी सीता ने विनय किया, कि हे भगवन् ! हे स्वामिन् ! हे अंतरात्मा प्राणपति ! आपके परोक्ष में यह दुष्ट रावण छलपूर्वक अपनी बलात्कारता से मेरा हरण कर ले आया और मैंने उस दुष्ट को नेत्र उठाकर देखा भी नहीं, केवल आपके भजन, स्मरण, ध्यानबल के आश्रय अद्यावधि अपने प्राण की रक्षा किया है इससे मैं निरपराध हौं । और जो

आपके वियोग होते ही इस शरीर से प्राण ने पयान न किया उस अपराध से मेरा त्याग करते हो तो यहाँ भी मेरा अपराध नहीं है। क्योंकि जिस समय आपकी परोक्षता में दुष्ट रावण ने मेरा हरण किया उसी काल से यह श्यामसुन्दर, धनुर्बाणधारी, मनोहरमूर्ति ध्यानवृत्तिद्वारा मेरे हृदयमें दृढ़तासे स्थित हुई उसने और स्वस्वयंवर में शिवधनुष के भंगद्वारा अनुभव किया जो आपके श्रीहस्त का पुरुषार्थ उसके आश्रय दुष्ट रावण के वधपूर्वक आप करके अपनी स्वीकारता की आशा ने इस उत्क्रामण होते प्राण को इस देह से पयान करने न दिया एतदर्थ भी मेरा अपराध नहीं। सो इन सब बातों को आप अंतर्यामीरूप से जानते हो तब विशेष क्या कहूँ।

हे सौम्य! इसप्रकार जब सीताने अपनी शुद्धता की विनय किया तब रामजी ने कहा कि इन वार्त्ताओं से तो तुम्हारी शुद्धि नहीं! तब रामजी के अन्तर अभिप्राय को जानकर सीता ने लक्ष्मणजी से कहा कि हे सौम्य! हे धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप इस काल में मेरे धर्म की सहायता के लिये चिता प्रज्वलित करिये, मैं उसमें प्रवेश करूँ और साक्षात् अग्निदेव मेरी शुद्धता को स्वामी के समक्ष प्रकट करें।

हे सौम्य! इस प्रकार जब जानकी ने लक्ष्मणजी से कहा, तब लक्ष्मण धर्मात्मा ने शीघ्र ही चिता प्रज्वलित किया। तब अतिप्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्र का ध्यान स्मरण करती अपने सत्य को आश्रयकर अग्नि में प्रवेश कर गईं। तब उसके सत्यके आश्रय

(सा न दाहते) इस छां॰ उ॰ के ६ प्रपाठक की श्रुति के प्रमाण से अग्नि अपने दाहक स्वभाव को त्यागकर हिमचन्दनवत् शीतल होगया और उस सत्यवती पतिव्रता सीता को अग्रसर कर, आप ब्राह्मणवेष से श्रीरामचन्द्र को जानकी की शुद्धता की प्रशंसा श्रवण कराते हुए जानकी को अर्पण कर दिया । तब अग्निद्वारा जानकी की शुद्धता लोक में विख्यातकर जानकी को आलिंगन दे, अपने वामभाग में स्थापितकर श्रीलक्ष्मीनारायणवत् श्रीसीताराम सुशोभित हुए ।

हे सौम्य ! इस लीला करके भगवान् रामचन्द्र ने सर्वप्रजा को यह उपदेश किया है कि स्त्री कैसी ही पतिव्रता साध्वी हो परन्तु जो चिरकाल से अन्य के गृह में रही हो तो यावत् उसकी सम्यक्प्रकार से शुद्धि न कर ले तावत् पर्यंत उसके वाक्य का विश्वास कर सहसा उसका ग्रहण न करना ।

हे सौम्य ! अब और श्रवण करो—श्रीरामचंद्रजी सर्व देवता आदिकों के समक्ष साक्षात् अग्निद्वारा सर्वप्रकार जानकी की शुद्धि कर पुनः लक्ष्मणादि सर्व सेनापति सहित पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अपनी राजधानी अवधपुरी में आकर भरतादि भ्रातासंयुक्त धर्मनीतिपूर्वक राज्यपालन करने लगे तदनंतर एक समय रात्रि को अपनी प्रजा के योगक्षेम अवलोकनार्थ स्वयं रामजी धनुर्बाण धारण कर एकाकी वीरयात्रा (गश्त) के अर्थ निकले । एक स्थान में किसी नीचजाति रजक धोबी के गृह स्त्री-पुरुष में कुछ कलह होता था ।

उससमय उस पुरुषने अपनी स्त्री से कहा कि हे पापचारिणी ! मैं कुछ राम नहीं । जो रावण के घर में रही सीता को पुनः अपने घर में ले आये । इससे तू मेरे घरसे निकल । मैं तुझको रखने का नहीं ।

हे सौम्य ! इस प्रकार से अपनी स्त्री को कहता जो वह नीच पुरुष, उसके वाक्य श्रवण करते ही वीरयात्रा से निवृत्त हो अपने भवन को पधारे और विचारने लगे कि इस शुद्ध जानकी के भी ग्रहण करने से लोकापवाद की निवृत्ति न हुई । इससे इस लोकापवाद की निवृत्ति के अर्थ जानकी का त्याग करना ही उचित है; ऐसा विचार कर जानकी द्वारा ही पुनः वनयात्रा की वरयाचना करा उस पतिव्रता शिरोमणि साध्वी गर्भवती जानकी को धर्मात्मा लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि मुनि के आश्रम को चिरकाल निवासार्थ भेज त्याग करदिया ।

हे सौम्य ! इस लीला करके रामजीने सर्वप्रजा को यह उपदेश किया कि जो व्यवहार आचरण धर्मशास्त्रादिकों करके निर्दोष भी हो तथापि जो उस आचरण में किसी प्रकार का लोकापवाद हो तो विवेकी पुरुष उस आचरण का त्यागही करे ।

हे सौम्य ! देखो, जिस रामजी ने सीता ऐसी पतिव्रता साध्वी सती रूपगुण की आकर नागर अपनी प्राणप्यारी गर्भवती निर्दोष स्त्री को केवल नीचपुरुष करके कहे लोकापवाद की निवृत्ति के अर्थ त्याग कर दिया उस विवेकी धीर धुरंधर धर्मात्मा रामचंद्र के विषय

में शोक-मोहादिकों का आरोप कर उनको ईश्वरअवतार न मानकर साधारण प्राकृत मनुष्य मानते हैं सो पुरुष विचारशून्य नास्तिक अपनेको लोकमें महात्मा यती विदित कर सनातनीय परम आस्तिक धर्मरूपी सीता के हरणकर्त्ता असुर रावण हैं। उनके वाक्य सनातनीय परम आस्तिक सत्यधर्मावलंबी पुरुषों को मानने योग्य नहीं।

हे सौम्य! इसीप्रकार श्रीकृष्णावतार करके भी जो जो काम-चेष्टादि लीला किया है वह सर्व लोकोपदेशार्थ ही किया है। उनमें वास्तव में कामादि विकार कदापि नहीं। इसका विस्तार ग्रंथगौरवता के भय से यहां लिखा नहीं। जहां उनके चरित्रों का विचार व्याख्यान किया है, वहां सविस्तार देख लेना।

हे सौम्य यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि श्रीरामकृष्णादि ईश्वर अवतारशरीर में जो जो शोक, मोह, कामादि अज्ञान लक्षणमुद्रा अपने में दिखाई है वह सर्वलोक में धर्मउपदेशार्थ ही—आभासमात्रही—देखाई है, वास्तव करके उनमें शोक, मोहादि अज्ञानमुद्रा कदापि नहीं और राम-कृष्णादि साक्षात् ब्रह्ममूर्ति ब्रह्मवेत्ता हैं तथाच—

"स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।"

(मुंडक उ० ३ मुंडक २ श्रुति।)

उन्होंने अपने अपने शिष्यों को ब्रह्मविद्या उपदेश करके मोक्ष किये हैं और उनके उपदेश किये वाक्यों के ग्रंथ, मुक्तिकोपनिषद् रामगीता, भगवद्गीता, भागवत का एकादशस्कन्धादि अद्यावधि

प्रकाशित हैं। उन ग्रन्थरूप वाक्यों के आश्रय श्रद्धाभक्तियुक्त आचरण विचारअभ्यास करके अद्यापि अधिकारी पुरुष मोक्ष को प्राप्त होते हैं। ऐसे जो एक अद्वैत, अभेद, अनुभवी, ब्रह्मोपदेशकर्त्ता ब्रह्मरूप परमाचार्य के शोकमोहादि अज्ञानलक्षण कदापि नहीं। जैसे सूर्य में अंधकार नहीं। तथाच—

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यति"

(ईशावास्य उ० ७ मन्त्र)

छां० उ० के सप्तम प्रपाठक की प्रथम श्रुति में कहा है कि— "तरतिशोकमात्मवित्" आत्मवेत्ता पुरुष शोकादि अज्ञानलक्षण से तरजाता है। तब उसके साक्षात् अवतारी शरीरों में शोकमोहादि त्रिकाल में भी नहीं, और अवतारी शरीरों में शोकमोहादि अज्ञान मुद्रा आभासमात्र देखाया है सो सर्वलोक उपदेशार्थ ही है। इससे राम-कृष्णादि अवतारी शरीरों में देखाये जो शोकमोहादि, उसका सूक्ष्मबुद्धि आस्तिकरीत्या कुतर्क के त्यागपूर्वक कहे प्रकार विचार करो और उनमें शोक मोहादिकों का आभासमात्र सीपी में रजतवत् असत्य अनुभव कर राम-कृष्णादिकों को साक्षात् ईश्वर अवतार निश्चय करें सनातन आस्तिकधर्म में स्थित हो। जिन पुरुषों को रामकृष्णादि अवतारशरीरों में शोकमोहादि अज्ञानमुद्रा का निश्चय पूर्वक ईश्वरभाव का अभाव मंतव्य है वह सूक्ष्म विचारशून्य अज्ञानी नास्तिक हैं। उनका संग तुम सरीखे विचारशील आस्तिक

बुद्धिवाले को करना योग्य नहीं, आगे जो तुम्हारी इच्छा।

हे सौम्य ! तुमने कहा कि राम-कृष्णादिकों में कर्तृत्वादि ईश्वरीय शक्ति नहीं । इससे उसको ईश्वर अवतार करके मानना योग्य नहीं । सो यह भी तर्क तुम्हारा ठीक नहीं; क्योंकि राम-कृष्णादिक ईश्वर के नैमित्तिक अवतार हैं। जिस धर्म की रक्षा अधर्म का नाश और सन्तों की रक्षा परबलगर्वित असुरों का नाश करने के अर्थ अवतारशरीर धारण किये हैं उसी कार्यकरके अपने निर्विशेषस्वरूप को प्राप्त होते हैं । उनका होना कुछ जगत्कर्तृत्वार्थ नहीं, केवल अधर्म दुष्टों के नाशपूर्वक धर्म साधु के रक्षणार्थ ही है । तथाच—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥" इति भगवद्गीता।

इससे हे सौम्य ! जिस जिस निमित्त परब्रह्म ईश्वर अवतार धारण करता है उसी उसीको करता है, कुछ जगत्रचना के न करने से राम-कृष्णादि ईश्वर अवतार नहीं, ऐसा कहना तुम्हारा योग्य नहीं । इससे सर्व कुतर्क को त्याग कर आस्तिकभाव में स्थित हो।

हे सौम्य ! यह धर्मरक्षणार्थ जो परमात्मा का अवतार होना तुम्हारे प्रति कहा वहाँ जिस धर्म की रक्षा करता है, उसको अब वेद की आख्यायिकापूर्वक कहते हैं । इसको श्रद्धान्वित हो सान-

धानता से श्रवण करो—यह गाथा सामवेद की तलवकारशाखा के केनोपनिषद् के तृतीय अरु चतुर्थ दो खंडों में परमात्मा के व्यक्ताव्यक्त दोनों प्रकार के अवतार और उस करके आसुरी संपदारूप अधर्मके नाशपूर्वक दैवीसम्पदा और ब्रह्मआत्मा का अभेद ज्ञानरूप धर्म को प्रकाशित किया है, यह सब वेद की आख्यायिका द्वारा श्रवण करो—

(मूलश्रुति)

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ । १ ॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्नव्यजानन्त किमिदं यक्षमिति॥ १५।२ ॥ तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ । ३ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति अग्निर्वाऽहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ १७ । ४ ॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳ सर्व्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ । ५ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धु स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ । ६ ॥ अथवा युमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० । ७ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्य-

वदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ २१ । ८ ॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ । ९ ॥ तस्मै तृणं निदधावेत दादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ । १० ॥ यथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति । तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ । ११ ॥ स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं ताꣳ होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ २५ । १२ ॥ इति तृतीयखंडः ॥ ३ ॥ सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये माहीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २६ । १ ॥ तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्तैह्येतत्प्रथमं विदाञ्चक्रुर्ब्रह्मेति ॥ २७ । २ ॥ तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येतत् प्रथमं विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २८ । ३ ॥ तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा इतीति न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् ॥ २९ । ४ ॥ अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ ३० । ५ ॥ तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स

य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ३१ । ६ ॥ उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मींवाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ३२ । ७ ॥ तस्यै तपो दमः कर्म्मेतिप्रतिष्ठा वेदाः सर्व्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ । ८ ॥ यो वा एतामेवंवेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोकेज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ । ६ ॥ इति चतुर्थखंडे तलवकारोपनिषत्समाप्ता । ॐ तत्सत् ॥

हे सौम्य ! पूर्व किसी एक समय देवता और असुरों का परस्पर युद्ध हुआ । वहां सर्व देवताओं का परदेव सबका प्रेरक सर्व शक्तिमान् परब्रह्म जो परमात्मा, उसकी बलसत्ता से देवताओं ने असुरोंको जीता, परंतु जिस सर्व शक्तिमान् सर्वात्मा की महिमा से असुरों का जय किया उसकी जय महिमा को न जानकर इन्द्रादि देवता उस जयमहिमा को परिच्छिन्न अपना पुरुषार्थ मानकर आसुरी संपदारूप असत्य अहंकार के आश्रय परस्पर विवाद करने लगे कि असुरोंको मैंने जय किया । दूसरे ने कहा मैंने जय किया । यह विजयमहिमा हमारी है ।

हे सौम्य ! जब इंद्रादि श्रेष्ठ देवता परमात्मा की महिमा को न जानकर इस प्रकार आसुरी संपदा असत्य अहंकाररूप अधर्म को प्राप्त हुए तब सर्वान्तर्यामी परमात्मा ने विचार किया कि यह दैवीसंपदावाले देवता भी आसुरीसंपदा असत्य अहंकार के आश्रय विवाद

करते हैं, सो यह देवता भी जो असुरभाव को प्राप्त हुए तो विना समय ही यह प्रलय करेंगे । इससे प्रथम इनके असत्य अहंकाररूप अधर्म को नाश कर पश्चात् इनको आत्मोपदेश करके दैवीसंपद्रूप धर्म की रक्षा करनी चाहिये ।

हे सौम्य ! इस प्रकार विचार कर परमात्मा देवताओं से कुछ दूर अव्यक्तरूप से अर्थात् हस्तपादादि अवयव आकाररहित केवल अति उज्ज्वल प्रकाशरूप प्रकट हुआ, तब इंद्रादि देवता प्रकाशमय ब्रह्म को देख आश्चर्यवान् हो विचार करने लगे कि यह अति उज्ज्वल पूजनीय महान् प्रकाश कौन है, इसका ज्ञात करना उचित है; क्योंकि कदाचित् कोई मायारूप से असुर ही हो अथवा साक्षात् परब्रह्म ही हो ऐसा शुद्ध पूजनीय प्रकाश माया की रचना में होना असंभव है। इससे अब इस पूजनीय प्रकाश को जानना आवश्यक है।

हे सौम्य ! इस प्रकार विचार कर इंद्रादि देवता अग्निदेव से कहने लगे कि हे अग्नि ! हे ज्ञानवान् ! यह जो आप और सर्व के समक्ष महाउज्ज्वल प्रकाश है, उसके समीप जाकर ज्ञात करो कि यह पूजनीय कौन है ? तब अग्नि तथास्तु कहकर उस प्रकाश के समीप जा तूष्णीं खड़ा रहा, उस पूजनीय प्रकाश के आगे प्रश्न करने की भी सामर्थ्य न रही क्योंकि अग्नि अपने में परिच्छिन्न असत्य अनात्म अहंकार को धारकर उस परमात्मा को, जो बुद्धि आदि किसी के भी ज्ञान में न आवे उसको जानने के अर्थ गया तब

परमात्मा ने अपनी विशेषशक्ति को आकर्षण कर अग्नि जो वाणी का देवता है, उसको अवाणी कर दिया इसलिये अग्नि उस परमात्मा के आगे तूष्णीं खड़ा रहा। तब उस प्रकाशमय पूजनीय ब्रह्म ने प्रश्न किया कि तू कौन है? तब परमात्मा के प्रश्नद्वारा किंचित् वाक्यशक्ति पाकर अग्नि ने कहा—मैं अग्नि हूँ और जातवेदा भी मुझको कहते हैं सो मैं हूँ। तब परमात्मा ने कहा कि तू अग्नि जातवेदा है। तुझमें क्या सामर्थ्य है। तब अग्नि ने कहा—मैं सर्व को भस्म करनेवाला हूँ। जगत् में जो कुछ है, सबको।

हे सौम्य! इसप्रकार अग्नि का साहंकार वाक्य श्रवण करके उस अग्नि के आगे तेजोमय ब्रह्मने एक सूखा तृण रख दिया और कहा कि इसको भस्म करो। तब अग्नि ने इस वाक्य को श्रवण कर तृणसमीप जाकर अपनी सर्व सामर्थ्य प्रकट किया, जो प्रलय-काल में ब्रह्मांडदाह के समय करता है परन्तु परमात्मा के दिये तृण के भस्म करने को समर्थ न हुआ। तब अग्नि लज्जावान् हो उस पूजनीय ब्रह्म के समीप से तूष्णीं हो देवता के समीप जाकर बोला कि मैं इसको जानने में समर्थ नहीं कि यह पूजनीय कौन है?

हे सौम्य! जब उक्तप्रकार अग्नि उस पूजनीय ब्रह्म के जानने में असमर्थ हुआ तब सर्व देवताओं ने वायु से कहा—हे वायु! हे अन्तरिक्ष में चलनेवाले! तुम जाकर इस पूजनीय प्रकाश को जानो कि यह क्या है? तब वायु तथास्तु कहकर उस पूजनीय

प्रकाश के समीप गया और समीप जाकर अग्निवत् प्रश्न करने की शक्ति से रहित तूष्णीं खड़ा रहा। तब उस पूजनीय प्रकाश ने प्रश्न किया कि तू कौन है ? तब वायु ने कहा कि वायु मेरा नाम है और मातरिश्वा अर्थात् अंतरिक्ष में चलनेवाला जिसको कहते हैं, सो भी मैं ही हूँ । तब ब्रह्म ने कहा कि तुझमें क्या शक्ति है ? तब वायु ने कहा—मैं सर्वको उठाता किंवा उड़ाता हूँ । जो कुछ जगत् में पदार्थ हैं उन सर्वको । तब उस पूजनीय प्रकाशमय ब्रह्म ने वायु के आगे भी तृण डाला और कहा कि इस तृण को उठाओ या उड़ाओ । तब वायु ने उस तृण के समीप जाकर अपना सर्व पुरुषार्थ किया तथापि वह तृण वायु से न उठा, न उड़ा । तब वह वायु अग्निवत् लज्जावान् हो तूष्णीं हुआ और देवताओं के समीप जाकर बोला कि हम इस यक्ष के जानने में शक्तिमान् नहीं कि यह पूजनीय कौन है ?

हे सौम्य ! इसप्रकार जब अग्नि, वायु, जो सर्व देवताओं में परम पुरुषार्थी हैं, वे भी उस ब्रह्मदत्त तृण के जलाने और उठाने में असमर्थ हुए और लज्जावान् हो ब्रह्म के समीप से निवृत्त हुए तब सर्व देवताओं ने विचारकर इन्द्र से कहा कि हे भगवन् ! आप सर्व देवताओं के अधिपति बल-बुद्धि करके सम्पन्न हो इससे हे मघवा ! आप इस पूजनीय के समीप जाय, ज्ञात कर निश्चय करो कि कौन यह पूजनीय है ? इन्द्र तथास्तु कहकर उस पूजनीय प्रकाश-मय ब्रह्म के समीप गया। तब वह पूजनीय प्रकाश तिरोधान होगया।

तब वह इन्द्र खड़ा होकर विचार करने लगा कि देखो हमारे आते ही यह पूजनीय प्रकाश तिरोधान हो गया। अग्नि, वायु से तो उसने सम्भाषण भी किया और हमारे साथ तो सम्भाषण भी न हुआ। इसप्रकार इन्द्र पश्चात्ताप करने लगा परन्तु जिस स्थान पर खड़ा रहा वहां से अग्नि वायुवत् निवृत्त न होकर उसी स्थान पर उस पूजनीय प्रकाशमय ब्रह्म की जिज्ञासा करता अपने देवराजत्वादि सर्व अभिमान से रहित यही विचारता रहा कि उस पूजनीय प्रकाश का दर्शन, भाषण मुझको कब होगा और कैसे होगा?

हे सौम्य! इसप्रकार जब इंद्र अपने सर्व अहंकार से रहित शुद्ध भाव से भक्तिपूर्वक ब्रह्मदर्शन की जिज्ञासा से खड़ा रहा। तब परमात्मा इन्द्र की श्रद्धा भक्ति जिज्ञासा अपने में देख उसी अवकाश प्रदेश में समीप ही स्त्रीत्व को प्राप्त हुआ अर्थात् देवी स्वरूप से प्रकट जो ब्रह्म, उसको प्राप्त हुआ अर्थात् इन्द्र को उपदेश करने के अर्थ साक्षात्परमात्मा ब्रह्मविद्यारूप से प्रकट हुआ। उसको उमा नामसे कहते हैं। सो कैसी हैं उमानाम्नी ब्रह्मविद्या। उत्तम सुवर्णवत् देहकान्ति और सुवर्ण के आभूषण करके भूषित अत्यन्त शोभायुक्त दर्शनीय परम-पूज्य उसको अवलोकन करता इन्द्र आश्चर्यवान् हो विचार करनेलगा कि जो यह अपने समक्ष प्रादुर्भूत देवरूपा परम पूजनीय देवी है तो उससे प्रश्नकरिये कि यहां अत्यन्त प्रकाशमय परमपूजनीय कौन था? इसप्रकार इन्द्रने विचार, उमानाम्नी ब्रह्मविद्या

देवी के समीप जा, प्रणामकर प्रश्न किया कि हे देवी! जो यहाँ हमारे समक्ष से तिरोधान हुआ, सो परम प्रकाशमय पूजनीय कौन था ?

हे सौम्य! इसप्रकार जब ब्रह्मावतार उमादेवी से इंद्र ने प्रश्न किया तब उस ब्रह्मावतार जगदंबा ब्रह्मविद्या ने उपदेश किया कि हे इंद्र! जिसके जानने के लिये तुमने प्रश्न किया है, वह प्रकाशमय परम पूजनीय परमात्मा है। उसीकी सत्ता से तुमने असुरों का जय किया है। उसकी विजयमहिमा को न जानकर तुमने अपने में विजयमहिमा का अभिमान वृथा किया है कि हमने असुरों का जय किया, परंतु सो जय करने की महिमा तो उसी स्वयं प्रकाश परमपूजनीय परमात्मा की है, तुम्हारी नहीं।

हे सौम्य! इस प्रकार जब ब्रह्मावतार उमानाम्नी ब्रह्मविद्या देवी ने उपदेश किया तब इंद्रको ज्ञान हुआ कि वह प्रकाशमय परम पूजनीय ब्रह्म ही था। वह हमारे सर्व के आसुरी संपदा असत्य अहंकाररूप अधर्म के नाशार्थ ही विशेष प्रकाशरूप से प्रकट हुआ था इससे उस धर्मरक्षक को नमस्कार है और अस्मदादि कोई भी किसी कार्य के करनेमें समर्थ नहीं जो कुछ जय-पराजय आदि होता है सो सर्व उस परमात्मा की ही सत्ता से होता है। इससे सर्वत्र सर्व कार्य करने को एक सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही समर्थ है, और नहीं। इस प्रकार विचार करता इंद्र उमा के उपदेश से परमपूजनीय सर्वशक्तिमान् परमात्मा की महिमा को जानकर आप आसुरीसंपदा

असत्यअहंकाररूप अधर्म से रहित परमआनंदित शान्तआत्मा होगया।
हे सौम्य ! अग्नि, वायु, इन्द्र यह तीनों देवताओं ने परम-पूजनीय परमात्मा के दर्शन-संभाषण किये एतदर्थ सर्व देवताओं में यह तीन देवता मुख्य हैं और सर्व प्रकार ऐश्वर्य विभूति करके सम्पन्न हैं । इनके समान अन्य देवता नहीं । अग्नि, वायु यह दो देवताओं ने इंद्र के उपदेश से ब्रह्म को जाना कि जिस पूजनीय प्रकाश के समीप हम गये और जिसके दिये तृण में भी हमारा सर्व पुरुषार्थ निष्फल गया इससे वह सर्वशक्तिमान् परम पूजनीय ब्रह्म ही था ।-इस प्रकार इंद्र के उपदेश से अग्नि, वायु आदि देवताओं ने ब्रह्म को जाना और इंद्र ने साक्षात् ब्रह्मावतार उमा-नाम्नी ब्रह्मविद्या का, जो परमात्मा का व्यक्त अवतार है, दर्शन-संभाषण और परमात्मविषयक उपदेशज्ञान पाया इससे अन्य ब्रह्म दर्शियों में सबसे प्रथम जाननेवाला सर्व से श्रेष्ठ सर्वका अधिपति है ।
हे सौम्य ! अब उस परब्रह्म को दृष्टान्त-दार्ष्टान्त करके और सर्वान्तर सर्वका प्रकाशक मायादि सर्वको सत्ता देकर चलानेवाला, सर्वान्तर्यामी, सर्वका अपना आप आचार्यों ने शिष्यों से कहा है । सो तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहते हैं ।
हे सौम्य ! जैसे विद्युत् (विजली) प्रकाशवती प्रकट हो आकाश में तिरोधान होती है, वैसेही विद्युत् का भी प्रकाशक अन्तरात्मा सर्व देवताओं के समक्ष सर्वकी आसुरीसम्पदा असत्य

अहंकाररूप अधर्म को नाश करने के अर्थ अरु निरभिमानता दैवी संपदारूप धर्मको स्थापित करने के अर्थ प्रादुर्भूत हो पुनः विद्युद्वत् तिरोधान हुआ, और इंद्र की विशेष श्रद्धा-भक्ति-जिज्ञासा अपने में देख उमानाम्नी अत्यन्त शोभावती ब्रह्मविद्या देवीरूप से प्रकट दर्शन दे अपने स्वरूप का बोध कराया और इन्द्रादि देवताओं को निरभिमानता आदि दैवी सम्पदा में स्थापित कर धर्मकी रक्षा किया।

हे सौम्य! जिस निरुपम ब्रह्म को उपमा-उपमेय करके विशेष प्रकाश द्वारा अधिदैवरूप से प्रतिपादन किया। अब उसी परमात्मा का उपदेश अध्यात्मरीत्या श्रवण करो—जिस परब्रह्म की सत्ता से देवताओं ने असुरों का जय किया वही सर्वका साक्षी स्वयंप्रकाश चैतन्य सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है। उसीकी सत्तारूप प्रकाश को पाकर प्राण, मन, इन्द्रिय आदि सर्व अपना अपना व्यापार करते हैं वही सर्वत्र सर्वका द्रष्टा ब्रह्म है इसीसे इसको 'तद्वन्' नाम से कहते हैं वह ब्रह्म सर्वको भजनीय है उससे प्रख्यात वह ब्रह्म सर्व को भजनीय इस गुण द्वारा उपासना करनेयोग्य है। जो कोई इस ब्रह्म की इस प्रकार उपासना करता है, उसको सम्पूर्ण भूत सर्व ओर से निश्चय से प्रार्थना करते हैं अर्थात् उस उपासक को देव, मनुष्यादि सम्पूर्ण भूत सर्वप्रकार से निश्चय पूर्वक शुश्रूषादि द्वारा प्रार्थना करते हैं जैसे कि ब्रह्मकी अर्थात् जैसे ब्रह्म सर्व करके

उपासनीय है वैसे ही ब्रह्मवेत्ता भी सर्व करके उपासनीय है; क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होता है।

हे सौम्य! इस प्रकार परमात्मा के अवतार सगुण ब्रह्मकी उपासना का फल निरूपण करके अब इस उपनिषद् के आदि संबंध के उपक्रम उपसंहार की अन्वय ऐक्यता करते हैं-पूर्व वैराग्य-शील,-आत्मकामा जिज्ञासु के "केनेशितं" आदि प्रश्न ऊपर आचार्य ने "श्रोत्रस्यश्रोत्रं" इत्यादि आरम्भ "सर्वाणि भूतानि संत्राञ्छन्ति" पर्यंत निर्विशेष सविशेष व्यष्टि समष्टि अधिदैव अध्यात्मरीत्या "सवाह्याभ्यंतरोह्यजः" इत्यादि प्रमाण से फलवाद सहित प्रतिपादन किया तदनंतर पुनः जिज्ञासु का "उपनिषदं भो ब्रूहि" प्रश्न हुआ वह इसलिये है कि जो ब्रह्म आपने सर्वात्मा करके कहा वही पराकाष्ठा परब्रह्म है किंवा कोई और है, जो इस सर्वात्मा से इतर ब्रह्म हो तो उसको भी कहिये। तब श्रुति के "अयमात्माब्रह्म" "नातः परमस्ति" इन उभयश्रुति की एक वाक्यता प्रमाणसंबंध से ग्रंथ समाप्त करके फलवाद कहते हैं-जो कोई कहे प्रकार आचार्य के वाक्य श्रुतिप्रमाण से आत्मतत्त्व का श्रवण करते हैं उन पुरुषों के तपकर्मादि सफल होते हैं अथवा उस परमात्मा की प्राप्त्यर्थ तप, दम, कर्म आदि उपाय हैं। और वेद चार अंगोंसहित चरणवत् है और सत्य उसका आयतन है। जो पुरुष निश्चय से इस ब्रह्मविद्या का इस कहे प्रकारसे जानते हैं, वह अपने सर्व पापों

को नाशकरके अनन्त सर्वोत्तम सुखरूप ब्रह्म में प्राप्त होते हैं ।

इति केनोपनिषदः ३-४ खण्डाः ।

हे सौम्य ! इस श्रुति की आख्यायिका से सर्वशक्तिमान् परमात्मा के धर्मरक्षणार्थ अवतार होने-न होने के विषय में और विना अवतार धारण किये ही सर्व कुछ करने की सामर्थ्य के विषय में विचार करो कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा सर्वकार्य करने में समर्थ होता हुआ भी अपनी आदि जो नीति है, उसको अन्यथा नहीं करता । उसकी आदि नीति है आकाश होके सर्वको अवकाश देना, वायु सूत्रात्मा होकर सर्वको धारण करना, भ्रमाना, अग्नि होकर तपाना, पचावना, मेघ हो कर जलवर्षा करना, जल होकर सर्व को शीतल-कोमल करना, पृथिवी होकर सर्वको धारण करना, अन्नोत्पादन करना, अन्न हो कर सर्वकी उत्पत्ति पालन करना, मृत्यु होकर सर्वको नष्ट करना, मेघ होकर वर्षा करनी ।

हे सौम्य ! इत्यादि जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा की नीति हैं, सो प्रत्यक्ष वैसे ही होता है उसको अन्यथा करने को कोई भी समर्थ नहीं, किन्तु सर्वशक्तिमान् परमात्मा सर्व करने-न करने-अन्यथा करने में समर्थ है तथापि वह अपनी ही स्थापित की हुई आदि नीति को कदापि अन्यथा करता नहीं क्यों कि उस विज्ञानघन परमात्मा ने पूर्व विचारकर ही किया है । इससे यह भी परमात्मा की नीति है कि जिस जिस प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपने

स्थापित किये धर्म की रक्षा और अधर्म की हानि तथा अधर्मी असुरों का नाश और संत-महात्मा-भक्तजनों का मनोवाञ्छित अभीष्ट सिद्ध होता जाते हैं उसी प्रकार व्यक्त अव्यक्त देव मनुष्य स्त्री पुरुष आदि आकृति अपने में धार तत्तत्कार्य को करना और अपने वास्तव स्वरूप में ज्यों का त्यों रहना। इससे यह जो परमात्मा की आदि नीति है अपने स्थापित किये धर्म की असुरादिकों से रक्षा अवतार शरीर से ही करना, सो वैसेही होता है।

इससे हे सौम्य ! जो कुतर्की नास्तिक पुरुष ईश्वर अवतार को नहीं मानते, उनके न मानने से ईश्वर अवतार का होना न हो, सो होना नहीं। जैसे उल्लू पक्षी को नेत्रदोष से सूर्य न देख कर अंधकार ही दिखाई देता है सो उसको सूर्य न दिखाई देने से सूर्य नहीं, ऐसा होना नहीं। ऐसे ही कुतर्की नास्तिकों के ईश्वर अवतार न मानने से ईश्वर अवतार नहीं, सो होना नहीं, और जो पुरुष अपने को वेदवादी आर्यधर्म्मावलंबी मानते हैं और ईश्वर का अवतार होना नहीं मानते, उन आस्तिकरूप नास्तिकों के मुखतर्क पर यह वेद सिद्धान्त पराविद्या के वाक्य प्रमाणरूपी वज्र का प्रहार कर खंडन करो, और जो इस श्रुति में अलंकार, क्षेपक आदि तर्क से अप्रमाण कहें तो उसी न्याय प्रमाण उनके प्रमाण किये वेदवाक्य का अप्रमाण होना सम्भव है, और जब परस्पर के विवाद से उभय पक्ष में कुतर्क खड़ी हुई तब परस्पर की श्रुतियों में क्षेपकादि दोष से

अप्रमाणता सिद्ध हुई तब सम्पूर्ण वेद अप्रमाण होगा और वेद जो है सो छन्दरूप है और जहां छन्द हैं वहां अलंकार हैं जैसे छान्दोग्य में मधुविद्या, आदित्यविद्या, सामविद्या, संहिता में यज्ञविद्या, पुरुषसूक्त में सहस्रशीर्षादि यह सर्व अलंकारसंयुक्त वेदवाक्य हैं तथापि वेद कुछ काव्य नहीं कि उसके वाक्य में काव्यालंकारादि दोष मानकर अप्रमाण किया जाय । वेद तो साक्षात् परमात्मा के वाक्य हैं उसकी रचना अकस्मात् छन्द रूप से ही हुई है और छन्द का और अलंकार का परस्परसमानाधिकरण संबन्ध है इससे जो कदापि ईश्वर वाक्य छन्दरूपी वेद में काव्यालंकारादि दोषमानके तर्क से अप्रमाणता उठेगी तो सम्पूर्ण वेद पर हरताल लग जायगा इससे वेदवादी को वेद में क्षेपक अलंकारादि दोष आरोपण करना योग्य नहीं ।

हे सौम्य ! यह जो तुमको वेदाख्यायिका कही हैं उसमें काव्यालंकार नहीं, यह साक्षात् ब्रह्मविद्या है ।

इससे हे सौम्य ! जे धूर्त पुरुष अपने को वेदमतावलंबी मान आर्य विदित करते हैं और वेद के ही सिद्धान्त वाक्य में तर्क कर अप्रमाण करते हैं तिनको वेदमतावलंबी न मान कर नास्तिक पर-मतावलंबी अनार्य पुरुष जानना और उनके वाक्य न मानकर उनका संग परित्याग करना और जो सनातनीय आम्नाय से वेदोक्त धर्म को सर्वप्रकार आस्तिक रीत्या मानकर ब्रह्म आत्मा का एकत्व

अनुभवकर्त्ता, आत्मवेत्ताओं का संग कर उनके वाक्यों में अतर्क विश्वास से धर्माचरण करना और ब्रह्म आत्मा की तत्त्वमस्यादि महावाक्य द्वारा निःसंशय एकता श्रवण मनन अनुभव अभ्यासकर तत्स्थिति पाकर जन्म मरण से रहित परम निर्वाणपद को प्राप्त होना यही कर्त्तव्यता और यही परमपुरुषार्थ है, आगे जो इच्छा ।

" यथेच्छसि तथा कुरु" इच्छा हो सो करो ॥

इति श्रीयमुनाशंकरगुर्जरनागरब्राह्मणकृत अवतारसिद्धि नामा ग्रन्थः समाप्तः ओमिति शुभमस्तु हरिःओम् ॥